श्री वेंकटाचलमाहात्म्यम्

तेलुगु मूल

श्री परवस्तु वेंकटरामानुजस्वामी

हिन्दी अनुवाद

आचार्य यद्दनपूडि वेंकटरमणराव

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्

तिरुपति

2013

Sri Venkatachala Mahathmyam

By
Sri Paravasthu Venkataramanuja Swamy

Hindi Translation
Prof. Yaddanapudi Venkataramana Rao

Editor-in-Chief
Prof. Ravva Sri Hari

T.T.D. Religious Publications Series No:1020

First Edition - 2013

Copies: 3000

Price:

Published by
L.V. Subrahmanyam, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

Printed at
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati.

प्राक्कथन

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किंचन।
वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति।।

शौनकादि महर्षि सूत महामुनि से प्रार्थना करते हैं कि श्रीमहाविष्णु के स्वयं व्यक्त क्षेत्रों में उनको कौन सा क्षेत्र अत्यंत प्रिय है, कहाँ पर भक्तों की समस्त मनोकामनाएँ पूरी होती हैं और कहाँ पर वास करनेवाले मानवों के लिए हरि का प्रत्यक्ष होना और प्राप्त होता सरल होता है, ऐसे क्षेत्र के बारे में बताकर उन्हें कृतार्थ करें। उस समय ऋषि-मुनियों की जिज्ञासा के समाधान में नारायण के विविध चरितों से युक्त और समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करानेवाले क्षेत्रों का सविस्तार विवरण सूत महामुनि देते हैं। साथ साथ यह भी स्पष्ट करते हैं कि यह क्षेत्र सर्व मंगलकर और सर्व पापहर भी है। उनके द्वारा स्पष्ट किये गये ये सारे विवरण वराह पुराण और भविष्योत्तर पुराणों में 'वेङ्कटाचल माहात्म्यम्' में प्राप्त होते हैं। उनके आधार पर विद्वान श्री वेंकट रामानुजस्वामी जी ने तेलुगु गद्य में ग्रंथाकार में उस विवरण को प्रस्तुत किया है। इसी का हिन्दी रूपांतरण आचार्य यद्दनपूडि वेंकटरमण राव जी ने यथा संभव सरल गद्य में प्रस्तुत किया। आशा है कि भगवान वेंकटेश्वर का वृत्तांत अब हिन्दी जानने वालों के पास भी पहुँचेगा।

श्री महाविष्णु का कलियुग अवतरण में ख्यात नाम श्रीवेंकटेश्वर है और उनका क्रीडाशैल वेंकटाद्रि है। उनके पृथ्वी पर अवतरण का वृत्त ही श्रीवेंकटाचल माहात्म्यम् है। इस वृत्त के साथ साथ स्वामी पुष्करिणी, जाबाली, पापनाशनम् आदि अनेक तीर्थों का माहात्म्य भी इस ग्रंथ में निहित हैं।

इतना ही नहीं श्रीमन्नारायण का वैकुण्ठ त्यागना, वेंकटाद्रि को अपना प्रिय वास क्षेत्र बनाना, कलि युगांत तक यहीं रहने का निर्णय लेना, आकाशराजा की पुत्री श्री पद्मावती से श्रीनिवास का विवाह वैभव, आकाश राजा के भाई तोंडमान चक्रवर्ती के द्वारा स्वामी के लिए दिव्य आलय का निर्माण करना, भगवान श्रीनिवास के उत्सव क्रम का निर्वाह, कलियुग में श्रीवेंकटेश्वर की लीलाएँ, कुछ भक्तों के चरित आदि से यह ग्रंथ भक्तों के लिए हृदयाकर्षक सिद्ध होगा।

सन् 1976 तक ही यह ग्रंथ तेलुगु में आठ पुनर्मुद्रणों द्वारा भक्तों के हाथों में पहुँचा है। इस के अनुबन्ध में श्रीवेंकटेश्वर अष्टोत्तर शत नामावली और कुछ अन्नमाचार्य के गीतों के हिन्दी अनुवाद जोडे गये हैं।

मूल लेखक की भावना को समुचित आदर देते हुए सरल हिन्दी में स्वामी के चरित को प्रस्तुत करने का प्रयास अनुवादक ने किया है। आशा है कि बालाजी का यह दिव्य चरित हिन्दी जाननेवाले पाठकों और भक्तों द्वारा समान रूप से समादरित होगा।

लंके वेंकट सुब्रह्मण्यम्
कार्यनिर्वहण अधिकारी
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति

तिरुपति,
दिनांकः

विषयानुक्रमणिका

प्रथमाश्वास

द्वितीयाश्वास

तृतीयाश्वास

अनुवादक का निवेदन

सर्व पापानि ''वें'' प्राहुः कटस्तद्दाह उच्यते।
तस्माद्वेङ्कटशैलोऽयं लोकविख्यातकीर्तिमान्।।

आन्ध्र प्रदेश प्राचीन काल से एक सुन्दर संस्कृति, धर्म और विचारों के समन्वय का क्षेत्र रहा है। संभव है, इसी कारण से विष्णु भगवान ने इस प्रान्त को अपने विचरण और वास का प्रान्त बनाया है। विष्णु के लगभग सभी अवतारों का संबन्ध इस प्रान्त से हैं, प्रधानतः पूर्वि घाटियों की सप्तगिरियों से। कलि युग केन्द्र तिरुमल है। 'तिरु' मानी 'श्री' और 'मल' मानी 'पर्वत', अर्थात् श्रीपर्वत अथवा श्रीशैल है।

भगवान के प्रायः सभी अवतारों से इस क्षेत्र का संबन्ध रहा है। इसी लिए सभी अवतारों से संबन्धित मंदिर भी आन्ध्र प्रदेश में, प्रधानतः तिरुमल के आस पास स्थित हैं। भगवान विष्णु का प्रथम अवतार मत्स्यावतार है। तिरुपति के पास नागलापुरम् में 'वेदनारायण' स्वामी का मंदिर है। वेदों की रक्षा के लिए ही नारायण ने मस्त्स्यावतार लिया था। वेदनारायण मूर्ति मत्स्यावतार मूर्ति ही हैं। तिरुमल तो वराह क्षेत्र है। आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम् के पास 'श्रीकूर्मम्' में श्रीकूर्मनाथ स्वामी का मंदिर है। तिरुमल पर्वतमालाओं में ही अहोबलम दिव्य क्षेत्र है। यहाँ के अवतार मूर्ति नृसिंह हैं। इस के आस पास भी नारसिंह क्षेत्र अनेक हैं। अहोबलम् कर्नूल जिले में व्याप्त सप्तगिरि पर्वतमाला में ही है। नृसिंह कृत युग के भगवान माने जाते हैं।

त्रेतायुग के रामचन्द्र जी तो गोदावरी तट पर आश्रम बनाकर रहे हैं। स्थान भद्राचलम् में पंचवटी है। द्वापर युग के श्री कृष्ण वृन्दावन से कांची तक आये थे। यहाँ से लौटते हुए ओरिस्सा प्रान्त में सत्यवादी साक्षीगोपाल के रूप में बस गये है। श्री वेंकटेश्वर स्वामी के संबन्ध में क्या कहना? ये कलियुग के पर देव हैं। श्री कृष्ण के पर अवतार हैं। अवतार नहीं भुवि पर पधारे विष्णु ही हैं। श्रीनिवास नाम से तिरुमल क्षेत्र में बसनेवाले हैं। यशोदा माता की इच्छा की पूर्ति के लिए और विश्व शान्ति रक्षक बनकर वेंकट गिरियों में विराजित हैं। यशोदा माता ही वकुलादेवी हैं।

इस भगवान के अनके नाम हैं। उन में प्रसिद्ध हैं - श्रीवेंकटेश्वर, वेंकटपति, वेंकटनाथ, तिरुवेंगलनाथ, वेंकटनृसिंह, वेंकटनरसिंह, वेंकटराम, वेंकटरमण, वेंकटकृष्ण आदि। सब उनके पाप नाशन सूचक अभिधान हैं। इनके अतिरिक्त तिरुमल-तिरुपति में पधारे भक्तों के मुँहों से सुनाई देनेवाला नाम ''गोविंद'' है। इस क्षेत्र में गूँजनेवाला नाम यही है।

अनेक पुराणों में विष्णु भगवान के अवतारों का वर्णन हैं। उन में श्रीवेंकटेश्वर भगवान का गान वराह पुराण और भविष्योत्तर पुराण में है। इन में वर्णित गाथाओं से परिचय कराने का प्रयास इस ग्रंथ में है। तेलुगु में यह ग्रंथ श्री परवस्तु वेंकट रामानुजाचार्य ने रचा है। इसे हिन्दी में भाषांतरित करने का अवसर आचार्य रव्वा श्रीहरि जी ने मुझे प्रदान किया है। तदर्थ मैं प्रथमतः उनको और तिरुमल-तिरुपति देवस्थानम् के कार्य निर्वहण अधिकारी को कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

श्रीनिवास का वृत्त मर्यादा की सीमाओं में चलता है। इस में भारतीय वैवाहिक पद्धतियों का सुन्दर विवेचन है। परकीया प्रेम वैशिष्ट्य से युक्त श्री कृष्ण का चरित उनके पर अवतार में स्वकीया प्रेम में परिवर्तन पाता है। श्रीवेंकटेश्वर का यह चरित अत्यंत महत्व पूर्ण है। आशा है कि यह पौराणिक गाथा भक्तों को अवश्य भायेगी। भक्तों से समादृत होगी।

सभक्ति

आचार्य यद्दनपूडि वेंकटरमण राव

श्री वेंकटाचल माहात्म्यम
प्रथम आश्वास

श्लोक : *श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेर्थिनाम् ।*
श्री वेंकटनिवासाय श्रीनिवासाय मंगलम् ।।
श्री वेंकटाचलाधीशं श्रियाध्यासितवक्षसम् ।
श्रितचेतनमंदारं श्रीनिवासमहं भजे ।।

1) मुनियों का सूत महामुनि से वेंकटाचल माहात्म्य कथन के लिए अनुरोध करना

''हे सूत महामुनि जी! श्री महाविष्णु के स्वयं व्यक्त क्षेत्रों में से कौन सा क्षेत्र भगवान को अत्यंत अत्यंत प्रीतिकर है? कहाँ पर भक्तों की समस्त कामनाएँ संपन्न हो जाती हैं? किस क्षेत्र पर स्वयं प्रभूत विष्णु भगवान का चरित अत्यंत अद्‌भुत है? किस क्षेत्र में वास करनेवाले मानवों के लिए हरि का प्रत्यक्ष होना सुलभ है? कहाँ पर स्वयं संभूत विष्णुमूर्ति का चरित दिव्य और श्रवणानंदकर होता है? ऐसे वैष्णव क्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त करने की प्रबल मनोकामना है। अशमित जिज्ञासा है। कृपा करके हमें ज्ञात कराइएगा।''- यह शौनकादि महामुनियों की सूत जी से विनम्र प्रार्थना थी।

'' हे मुनिप्रवर! आप की इस प्रकार पवित्र चरित से संबन्धित क्षेत्र की जानकारी की जिज्ञासा अत्यंत अभिनंदनीय है। मेरे लिए महदानंदकारक भी है। मेरे मन में भी विष्णु भगवान के ऐसे चरित को सुनाने का भी कौतुक उमड़ रहा है। श्री हरि की अद्‌भुत क्रीडाओं से युक्त, अष्ट ऐश्वर्य प्रदायक, सुभ कारक, पुण्य प्रदाता, दीर्घायु प्रदान करने वाला एवं सेषाचल से संबध्द वराह कल्प का एक महद्

वृत्त है। यह अत्यंत महिमावान है। यही श्री वेंकटाचल माहात्म्य है। श्रध्दा से सुनियेगा।''- सूत महामुनि प्रशान्त मन से वृत्तांत कहने लगे।

2) विष्णु भगवान का श्वेत वराह के रूप में पृथ्वी का उद्धारः

प्रलय काल के अन्त में समस्त सृष्टि जलमय हो गयी थी। उस समय पृथ्वी भी पानी में डूब गयी। तब वट-पत्र शायी श्रीमन्नारायण ने भूमि की रक्षा के लिए श्वेत वराह का रूप धारण किया था। प्रलय जल निधि से पृथ्वी को उभार कर बाहर निकालकर ला ही रहे थे कि हिरण्याक्ष राक्षस ने उनको रोकना चाहा। उन पर धवा बोल दिया। हिरण्याक्ष से विष्णु को भिड़ना पड़ा। लडाई में हिरण्याक्ष का संहार किया गया और साथ साथ पृथ्वी का उद्धार भी हो गया। भूमि के पुनः स्थापन के पश्चात नारायण ने बह्मा को नये सिरे से सृष्टि-प्रक्रिया के आरंभ का आदेश भी दिया। तदनंतर दुष्टों को दण्डित करने और शिष्टों की रक्षा के हेतु श्वेत वराह स्वामी के रूप में महाविष्णु ने इस पृथ्वी पर कुछ समय तक रहने का निर्णय भी लिया।

(वराहपुराण 33 वाँ अध्याय)

3) वैकुण्ठ से गरुड़ का क्रीडाचल पर्वत को पृथ्वी पर लानाः

पृथ्वी पर कुछ समय तक वास करने के अपने निश्चय के अनुरुप श्रीहरि अपने लिए उपयुक्त योग्य क्षेत्र की खोज में निकले। ढूँढते-ढूँढते गोमती नदी के दक्षिण में बीस योजन की दूरी पर तथा पूर्व समुद्र से पाँच योजन पर सुवर्णमुखी नदी के उत्तर में स्थित प्रांत

को दिव्य क्षेत्र के रूप में पाकर वे वहाँ पहुँचे। वही क्षेत्र गरुड़ का आगमन क्षेत्र भी था। वह अमेय, सर्व रत्नमय, सुवर्ण शिखरों से शोभित क्षेत्र था। उपनिषदों से प्रशंसित, सुर द्रुमों से शोभित पवित्र क्षेत्र था। विविध पक्षि समुदायों के कलरवों से श्रवणों को आनंद पहुँचानेवाला सुरम्य प्रान्त था। तरह तरह के रंग-बिरंगे फूलों के सौरभ को बिखारनेवाला प्रदेश थ। किन्नर-किंपुरुष आदि का निवास स्थान बनकर अनेक जल स्त्रवंतियों से मन बहलानेवाला विमल प्रान्त था। नित्य मुक्तों और कामरूपी देवताओं से सेवित पवित्र स्थल था। तीन योजन चौड़ा तथा तीस योजन लंबा यह क्षेत्र शेष रूपी होकर हरि के लिए अत्यंत प्रीतिकर बना। स्वयं आदिशेष हरि के वासार्ह गिरियों के रूप में यहाँ आ ठहरे थे। देखने मात्र से मोक्षप्रदायक नारायणगिरि नाम से विभासित हो यह पावन क्षेत्र श्रीमहाविष्णु का कलियुग क्रीडाक्षेत्र बन गया। इस पवित्र पर्वत श्रृंखला को भगवान विष्णु के आदेशानुसार निर्देशित प्रान्त में ही गरुड ने उतारा था। स्वामी पुष्करिणी की पश्चिम दिशा में कोटि सूर्य प्रभा समन्वित विमान में विष्णु भगवान श्वेतवराह रूप में रहने लगे। कुछ ही समय के अंतराल में एक और विमान में शंख-चक्र-गदाधारी श्रीनिवास स्वयंभू के रूप में वहीं विलसे।

(वराहपुराण 34 वाँ अध्याय)

4) श्री स्वामी पुष्करिणी माहात्म्य

तब ब्रह्मा, शिव आदि देवता गण, ऋषि-मुनि समूह, गंधर्व, मरुत्त समुदाय आदि सब आकर हिरण्याक्ष संहार के लिए अपनाये दंष्ट्राकरालवदन युक्त वराह रूपी भगवान विष्णु के सामने प्रणमित

हुए। स्तुतियाँ की। तदनंतर प्रार्थना के स्वर में कहा -''हे भगवन्! देवता तथा मानव समूह के रक्षार्थ आपने यह भयावह रूप धारण किया था। पृथ्वी का उद्धार तो हो चुका है। अब समस्त जीव कोटि की रक्षा के लिए आपको सौम्य रूप धारण करना ही होगा। ऐसे रूप में ही आपको यहाँ निवासी होना है। समस्त भक्तलोक को वर प्रदान करते रहना है।'' इस प्रार्थना से भगवान प्रसन्न हुए। तब उन्होंने चतुर्भुज संयुत हो श्री (लक्ष्मी) भू (भूदेवी) समेत शरत् चंद्रिकाएँ भिखेरनेवाले दिव्य वदन से, सर्वाभरणों से विलसित होकर विशिष्ट सौम्य रूप में श्रेष्ठ वेंकटाद्रि पर विराजमाने का अपना निर्णय दिया। इस रूप में सभी वर्गों और प्रान्तों के भक्त समुदाय की कामनाओं की पूर्ति करने का आश्वासन भी दिया।

क्रीडाद्रि के साथ श्री स्वामी पुष्करिणी को भी वैकुण्ठ से लाकर गरुड़ ने पृथ्वी पर अवतरित किया। यह श्रीदेवी और भूदेवी दोनों के लिए अत्यंत प्रीतिकर रहा। अप्राकृतिक एवं पवित्र जलों से युक्त पुष्करिणी मनोहर है। यह गंगादि सर्व तीर्थों की स्रोतस्विनी है। विरजा नदी के समान समस्त पाप हारिणी है। इस में स्नान मात्र से समस्त ऐहिक फल संप्राप्त होते हैं। पुष्करिणी के दर्शन से, जल सेवन से, नाम स्मरण से समस्त सिद्धियाँ सरल रूप से प्राप्त होती हैं। इष्टकाम्यार्थ सिद्धि मिलती है -

स्वामिपुष्करिणीस्नानं सद्गुरोः पादसेवनम्।
एकादशीव्रतं चापि त्रयमत्यन्तदुर्लभम्।
दुर्लभं मानुषं जन्म दुर्लभं तत्र जीवनम्।
स्वामिपुष्करिणीस्नानं त्रयमत्यन्तदुर्लभम्।।

(वराहपुराण - 35 अध्याय)

5) क्रीडाद्रि के विविध नाम

क्रीडाद्रि एक एक विशेष कारण से एक एक अलग नाम से युक्त होकर अनेक पवित्र अभिनामों से विराजमान है। स्मरण-चिंतन मात्र से सब चिंताओं से मुक्त करनेवाला होने के कारण यह 'चिन्तामणि' है। ज्ञान प्रदयिनी होने के कारण यह 'ज्ञानाद्रि' है। सर्व तीर्थों से समन्वित होने के कारण यह 'तीर्थाद्रि' है। पुण्य पुष्करिणियों का विशेष क्षेत्र होने के कारण यह 'पुष्कराद्रि' है। इस गिरि पर यमधर्म राज ने तपस्या की थी। तत्परिणामतः यह 'वृषाद्रि' है। सुवर्ण कान्तियों से प्रभावान यह अद्रि 'कनकाद्रि' है। नारायण नामक एक विप्र ने इस पर्वत पर तपस्या की थी। उनके नाम को प्रकाशित करने के लिए यह 'नारायणाद्रि' है। इस संदर्भ की एक विशेषता का उल्लेख यहाँ समीचीन है। उस ब्राह्मण की इच्छा भी यही है। इस के अनुरूप ही भगवान ने वचन दिया था। वैकुण्ठ से लाये जाने के कारण यह 'वैकुण्ठाद्रि' नाम से प्रसिद्ध है। हिरण्य कश्यप का वध करके प्रह्लाद को अनुग्रह दान करने के कारण और प्रधानतः नृसिंहावतार इन्हीं पर्वत श्रेणियों में धरित होने के कारण यह 'सिंहाचल' भी है। अंजना देवी ने देवताओं और मानवों की सहायता करने में समर्थ पुत्र की कामना से यहाँ तपस्या की भी। उनकी तपस्या के फल ही है आंजनेय। अंजना देवी की तपस्या का स्थल और हनुमान के उद्भव का स्थल होने के कारण यह 'अंजनाद्रि' नाम से भी व्यवहार में सिद्ध है। नील नामक वानरेन्द्र ने भी इन पहाड़ियों में रहते हुए तपस्या की भी। उनके नाम पर यह 'नीलगिरि' और 'नीलाद्रि' नामों से ख्यात हुआ है।

'वेंकार' अमृत बीज है, 'कट' का अर्थ ऐश्वर्य है। अमृत ऐश्वर्य प्रदानकरनेवाली गिरि होने के कारण यह 'वेंकटाद्रि' है। श्रीनिवास का शुभ निवास स्थली होने के कारण यह 'श्रीनिवास गिरि' है। भगवान की क्रीड़ास्थली होने के कारण से वैकुण्ठपुर वासियों ने इसे ''आनन्दाद्रि'' कहा है। इसी नाम से भक्त जन स्मरण करते हैं। श्री पद युक्त (भगवान के पवित्र पादों से संयुत) होने के कारण इसका एक सार्थक अभिदान ''श्रीशैल'' है।

(वराहपुराण - 36 वाँ अध्याय)

6) वेंकटाद्रि पर भगवान की अद्भुत लीलाएँ

वेंकटगिरि का माहात्म्य सुनकर कुछ ऋषि इस पर वास करने पहुँचे। कुछ दिन के निवास के बाद सब ने मिलकर एक महायज्ञ करने का निश्चय किया। यज्ञान्त में यज्ञ भाग स्वीकार करने श्रीलक्ष्मी समेत महाविष्णु प्रत्यक्ष हुए। तब समस्त ऋषि मुनि समूह आश्चर्य चकित हुआ। साथ साथ वे इस धरना को अपना महाभाग्य और जीवन की सफलता मानकर आनंद विभोर हुए।

एक और संदर्भ में श्रीहरि वेंकटाद्रि पर विहरण कर रहे थे। उस समय शरिर से शिथिल, नयनों की कान्ति के मन्द पड़ने पर सीमित दृष्टि से पीडित, कदम आगे बढ़ाने में कमजोर, भूख-प्यास से तड़पनेवाला एक वृद्ध ब्राह्मण उनको दिखा। वह एक शिला पर बैठा था। उसका कौंडिन्य नामक एक पुत्र था। वह अपने पुत्र को जोर से पुकार रहा था- ''अरे कौंडिन्य! हे पुत्र! शत वर्षी वृद्ध मुझे छोडकर तू कहाँ चला गया है रे!'' एक युवा के रूप में उस प्रान्त में टहलनेवाले श्रीहरि ने पाया कि वहाँ आसपास में कोई नहीं था।

पास पहुँचकर उस वृद्ध ब्राह्मण से पूछा- ''हे ब्राह्मण! यहाँ कोई नहीं है। कौंडिन्य कहाँ है? क्यों आप उसे जोर से पुकार रहे हैं?'' तब उस रूपधारी श्रीनिवास ने बूढ़े ब्राह्मण ने कहा - ''ओह! ऐसा है तो मैं यहाँ से दूर पर स्थित अपने आश्रम तक कैसे पहुँच सकता हूँ? किसी बन्धु की सहायता के बिना मैं शक्ति ही हूँ। ऐसे दुर्बल को क्यों विधि पता नहीं अब तक जीवित रख रहे हैं? क्यों न मुझे ले नहीं जाते?''- ब्राह्मण ने अपनी दयनीय स्थिति बतायी। इन वचनों को सुनकर युवा श्रीहरि ने उस ब्राह्मण से कहा- ''हे ब्राह्मणोत्तम! आप का शरीर जर्जरित है। आँखें मंद पड गयीं हैं। क्या अब भी आप में जीने की इच्छा है? अथवा मरना चाहते हैं?'' सुनकर विप्र ने कहा- ''सत्य कहूँ, मुझ में और जीने की इच्छा है नहीं। परन्तु नित्यज्योतिष्टोमम् आदि कर्म मैं ने संपन्न नहीं किया है। अब करने की कामना है। ऐसे कर्मकाण्डों के निर्वहण के बिना मैं देव-ऋण से कैसे मुक्त हो पाऊँगा?''- विप्र की बातें सुनकर श्रीहरि ने आगे बढ़कर अपने हाथ का सहारा दिया। साथ लेकर एक पवित्र धारा में नहलवाने के लिए ले गये। उस धारा में जब वृद्ध ने स्नान करके निकला तो अपने को एक सोलह वर्षीय युवक के रूप में पाया। तब श्रीहरि ने विप्र से कहा- ''हे ब्राह्मण! अब आप जो भी यज्ञ-यागादि पूरा करना चाहते हैं कीजिएगा। उसके लिए आवश्यक शरीर ही नहीं, बल्कि उपयुक्त धन भी दे रहा हूँ। लीजिए।'' इस सब को देखकर ब्राह्मण तो पुलकित हो गया। साथ ही देवता और गंधर्व भी आश्चर्य चकित हो गये। श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। उस वृद्ध ब्राह्मण को स्नानोपरांत युवा बनानेवाली उस धारा का नाम ''कुमार धारा'' पड़ा।

(वराहपुराण - 37 वाँ अध्याय)

एक और समय की घटना है। सांकाश्य नामक देश पर शंखण नामक चन्द्रवंशी राजा शासन कर रहे थे। परंपरा से प्राप्त वह सामन्त राजाओं से आक्रमित हो गया। परिणामतः शंखण राणियों एवं मंत्रियों सहित राज्य से भगाये गये। राजा शंखण व्यथित होकर दक्षिण की ओर निकले। दक्षिण में सेतु तक पहुँचकर समुद्र स्नान किया। फिर उत्तर की दिशा में यात्रा पर निकले। रास्ते में सुवर्णमुखी तट पर पहुँचे। नदी में पवित्र स्नान किया। सुवर्णमुखी नदी के उत्तर में विराजमान पद्मसरोवर तक जाकर श्रद्धा पूर्वक पवित्र स्नान किया। नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान भी निभाये। फिर वहीं सो गये। राज्य भ्रष्ट होने के कारण दुःखित राजा को एक वाणी सुनाई पड़ी - हे राजन! दुःखी मत होना! धैर्य धारण करो! यहाँ से एक कोस की दूरी पर वेंकटाद्रि नामक महागिरि विद्यमान है। वहाँ निर्हेतुकी दया दिखानेवाले और आश्रित पक्षपाती कमलापति विलसे हैं। वहाँ पुष्पित कमलों से शोभित स्वामी पुष्करिणी है। उसके पश्चिम तट पर सुन्दर नग है। तुम वहाँ चले जाना। उस सरसी के पास ही एक कुटी का निर्माण कर त्रिसंध्याओं में पवित्र स्नानोपरांत चतुर्भुजी, शंख-चक्रपाणी श्रीहरि की श्रद्धा से छह मास पर्यन्त आराधना करना। इसके उपरांत तुम्हें राज्य पुनः प्राप्त होगा।''

स्वप्न वाणी से प्रकृतिस्थ होकर राजा शंखण ने अपनी चिंताएँ वहीं छोड़ी। शीघ्र ही श्रीवेंकटाद्रि पहुँचे। अशरीरवाणी के कहे अनुसार वेंकटाद्रिवास श्रीनिवास की पूजाएँ करते हुए छह मास बिताये। राजा की आराधना से संतुष्ट होकर स्वामी पुष्करिणी के मध्य से कोटि सूर्य सम प्रभा से पुष्करिणीराय श्रीपति प्रकट हो गये। शंख-चक्र-गदा धारी श्रीमहाविष्णु श्रीदेवी-भूदेवी सहित प्रत्यक्ष हुए तो राजा ने विनम्र

भाव से नमस्कार अर्पित कर अपने राज्य की पुनः प्राप्ति का वर माँगा। तब श्रीहरि बोले- ''हे भक्तवर! तुम ने श्रद्धा और भक्ति से पुष्करिणी स्नान किये। अवश्य तुम को स्वामित्व प्राप्त होगा। इस पुष्करिणी में इसी प्रकार जो भी पवित्र-स्नान करेगा उसे अपनी कामनाओं के अनुरूप फल मिलेंगे। तुम लौट कर अपने राज्य को प्राप्त करो।'' - इतना कहकर स्वामी अन्तर्धान हो गये।

शंखण सपरिवार निज देश की ओर निकले। रास्ते में गोदावरी तट पर अपने राजा की प्रतीक्षा करती हुआ शंखण राज्य की प्रजा मिली। राजा को देखकर लोग आनंद विभोर हुए। प्रार्थना की - ''हे महाप्रभु! सामंत राजाओं के बीच आपसी वैमस्य बढ़े हैं। उसी कारण वे आपस में लडकर राज्य छोड़कर भाग गये। हम अनाथ हो गये हैं। आप यथापूर्व रीति से राज्य में लौटिए। शासन भार संभालिए।'' सब ने राजा को सादर आमंत्रित किया। वापस जाकर राज्य संभाला। तब राजा शंखण ने समझा कि यह सब स्वामी पुष्करिणी स्नान और वेंकटाद्रि क्षेत्र में श्रीनिवास की आराधना का ही महत्व है। राज्य प्राप्ति भगवान की महिमा का फल है।

(वराहपुराण - 38 वाँ अध्याय)

मध्यदेश में आत्माराम नामक एक ब्रह्मण रहता था। वह सद्वंशी एवं देव-ब्राह्मण आराधक था। प्रधानतः वह विष्णु भक्त तथा वेद-वेदान्तों का पारंगत भी था। पिता के निधन के कुछ ही समय में उसकी सारी संपत्ति नष्ट हो गयी। उसकी वृत्ति की भी हानि हो। गयी। उसकी ओर ध्यान देनेवाला भी वहीं रह गया था। अपनी दशा पर वह दुःखी हो गया। उसके सामने का प्रश्न था कि वह अब क्या करें? और कहाँ जायें। अन्त में उसने निश्चय लिया कि ''प्रथमतः

वह कपिलतीर्थ पहुँचकर कपिलेश्वर का दर्शन करेगा।'' निश्चय के अनुरूप उसने सत्रह तीर्थों में स्नान किया। अन्ततोगत्वा वेंकटाद्रि पहूँचा। सर्व तीर्थों में स्नान किया। इस से उसके सारे पाप धुल गये। उसके चित्त को एक अनोखी शान्ति मिली। अन्त में वेंकटाद्रि पर एक स्थान पर बैठकर चिंतन-ध्यान करने लगा।

समीपी एक गुफा में ध्यान-योग परायण और अत्यंत प्रकाशवान सनत्कुमार योगीन्द्र तपस्या रत थे। ब्राहण ने सुना था कि सनत्कुमार महान योगीन्द्र हैं तथा भूत-भविष्य-वर्तमानों को स्पष्टतः जाननेवाले हैं। ब्राह्मण ने सोचा कि उनके दर्शन से और अपने बारे में पूछने से कोई अच्छा मार्ग निकल ही आयेगा।

बस, ब्राह्मण सनत्कुमार योगी के पास पहुँचा। प्रणमित होकर अपने कष्ट सुनाये। हित मार्ग दर्शन की प्रार्थना की। योगी सनत्कुमार कुछ समय ध्यान मग्न रहे। तत्पश्चात् ब्राह्मण की ओर देखकर कृपा भाव से कहा - ''हे ब्राह्मण! तुमने पूर्व जन्म में अनेक पाप किये हैं। उनका फल अब तुम भोग रहे हो। अनेक दान-पुण्यों को विघ्न पहुँचाया है। सुख से जीवन बितानेवालों को अनेक पीडाएँ दी हैं। अनाचार पूर्ण व्यवहार किये हैं। प्रणतार्ति हर विष्णु की तुमने भक्ति से आराधना नहीं की। परन्तु इस सब को पार करने के उपाय अवश्य हैं। उनमें महत्वपूर्ण एक उपाय है। सर्वलोक जननी महालक्ष्मी सर्वपाप हारिणी हैं। सकल संपत्तियों को प्रदान करनेवाली हैं। उन्हें प्रसन्न करने का भी एक 'व्यूह मंत्र' है। मैं उसका उपदेश दूँगा। महालक्ष्मी की उपासना करो।'' योगी मंत्र का उपदेश देकर अन्त र्धान हो गये।

आत्माराम को अमित आनंद हुआ। मंत्रजप के लिए वह वेंकटाद्रि पहुँचा। वहाँ के अनेक तीर्थों में स्नान किया। अंत में श्री स्वामी पुष्करिणी के पास पहुँचा। पुष्करिणी स्नान के साथ उसने अनुभव किया कि उसके सारे पाप धुल गये। शरीर पुलकित हुआ। लगा कि शरीर का भार भी उतर गया है। तभी पुष्करिणी तट पर सोने के विमान पर सर्वाभरण विभूषित पीतांबरधारी श्री-भू-देवी सहित वेंकटेश्वर भगवान प्रत्यक्ष हुए। आत्माराम ने साष्टांग प्रणाम किया। मुग्धभाव से स्वामी के सामने खडा ही रह गया। भगवान सर्वज्ञ हैं। करुणा स्वरूप हैं। भक्त का मनोगत समझते हैं। स्वामी प्रसन्न होकर बोले - ''हे भक्त! डरो मत। तुम्हारे समस्त पाप शमित हो गये हैं। तुम को दीर्घायु और दीर्घकालिक ऐश्वर्य प्रदान कर रहा हूँ। मन की इच्छा के अनुसार इस का भोग करो।'' ब्राह्मण संभ्रमित हुआ। सोचने लगा कि क्या यह सत्य है? सपना तो नहीं है। उसे सब कुछ प्राप्त हो गया। आत्माराम वेंकटाद्रि से उतर कर पहाड के नीचे मैदान में में पहुँचा। पास ही अपने लिए उचित वास बनाकर सर्व सुखों का अनुभव करता हुआ अपना जीवन व्यतीत किया।

(वराहपुराण - 39 वाँ अध्याय)

7) कपिलतीर्थ आदि सत्रह तीर्थों का माहात्म्य

वेंकटाद्रि की पदतल सीमा में कपिलतीर्थम् प्रसिद्ध क्षेत्र है। वहाँ विलसित कपिलेश्वर लिंग पहले कपिल महामुनि द्वारा पाताल में अर्चित शिव लिंग है। यह पाताल से निकला लिंग भूमि को छेदता हुआ ऊपर आ गया। समस्त देवता समूह की प्रार्थनाओं के फल स्वरूप शिव लिंगाकृति में यहाँ विलसे हैं। उनकी पवित्र मूर्ति के

सामने कपिलतीर्थ जल धारा है। यह धारा वेंकटगिरियों से निर्गत होकर बहती है। यह कपिलतीर्थ क्षेत्र सर्वपाप प्रणाशनी है।

कपिलतीर्थ के ऊपर परम पावन शक्रतीर्थ है। अहल्या वृत्त के कारण इन्द्र को घोर पाप लगा था। उसका शमन इस तीर्थ में स्नान करने से ही हुआ। शक्रतीर्थ के ऊपरी प्रांत में विष्वक्सेनतीर्थ है। वरुण पुत्र विष्वक्सेन ने इस तीर्थ के पास महिमान्वित तपस्या की थी। तपःफल के रूप में विष्वक्सेन को हरि का साक्षात्कार ही नहीं, अपितु उनके सेनापति होने का वरदान भी मिला।

विष्वक्सेन तीर्थ के ऊपरी प्रान्त में पंचायुध तीर्थ है। तत्पश्चात् अग्नितीर्थ है। ब्रह्महत्यादि पातकों से मुक्त करनेवाला ब्रह्म तीर्थ पास ही है। उस से सटकर सप्तमुनि तीर्थ हैं। ये समस्त तीर्थ शताधिक फल प्रदायक हैं।

पहले एक ब्राह्मण विश्व के तीर्थों की यात्रा का संकल्प लेकर घर से निकला था। यह श्रम साध्य यात्रा थी। ब्राह्मण विष्णु भक्त था। श्री महाविष्णु ने उस ब्राह्मण को सपने में दर्शन देकर कहा - ''हे भक्त! तुम ने क्यों इतने श्रम साध्य कार्य अपने शिर पर लिया है? वेंकटाद्रि पर सप्तदश तीर्थ विद्यमान हैं। उन में स्नान करोगे तो विश्व भर में व्याप्त सकल तीर्थों के स्नान और सेवन का पुण्य फल संप्राप्त होनेवाला है।'' भगवान विष्णु के आदेशानुसार संसार भर के तीर्थों की यात्रा को स्थगित कर ब्राह्मण वेंकटाद्रि पहुँचा। वहाँ के सत्रह तीर्थों में शास्त्र सम्मत रीति से स्नान कर समस्त तीर्थों की यात्रा का फल पाया।

भुवन त्रयी में व्याप्त तीर्थों का सम्यक फलप्रदान करने की शक्ति से युक्त तीर्थ श्रीवेंकटाद्रि पर हैं। इसीलिए वेंकटाद्रि की परिक्रमा मात्र से भू-परिक्रमा का फल प्राप्त होता है। ऐतिह्य है कि श्रीकृष्ण सहोदर बलराम ने वेंकटाचल दर्शन मात्र से तीर्थ यात्राओं का फल पाया है।

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार धर्मराजादि पांडव सहोदरों ने यहाँ वास करते हुए एक पुण्य तीर्थ में एक वर्ष भर पुण्य स्नान किये थे। इसी लिए उस तीर्थ का नाम पांडवतीर्थ पड़ा। इसतीर्थ में नित्य स्नान फल के रूप में ही पांडवों ने कुरुक्षेत्र संग्राम विजय पायी है।

(वराहपुराण - 40 वाँ अध्याय)

8) श्री रामचन्द्र जी का वेंकटाद्रि पर आगमन

ऋष्यमूक पर्वत से वानर सेना को लेकर रावण संहार के लिए लंका की ओर प्रस्थान करनेवाले श्रीराम जी मार्ग में शेषाचल पर्वत पहुँचे। उस समय हनुमान की माता अंजनादेवी ने राम के पास जाकर कहा - ''आप के आगमन की प्रतीक्षा में मैं इस गिरि पर तपस्या कर रही हूँ। साथ साथ यहाँ का मुनि समूह भी आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। हम सब को कृतार्थ कीजिएगा।'' इस पर रामचन्द्र जी ने अंजनादेवी से कहा - ''माता जी! अगर मैं अभी आऊँ तो समय बीत जाएगा। लंका से लौटते समय मैं यहाँ आऊँगा और रहूँगा।'' श्रीराम जी के वचन सुनकर मारुति ने प्रणमित होकर कहा - ''वानर सेना कुछ थकी दिखाई दे रही है। किसी एक स्थान पर विश्राम करना आवश्यक है। यह पर्वत भी मार्ग में ही है। इतना ही नहीं यह पुष्पवन फलों से भी भरा है। अनेक स्त्रवंतियों से

विराजमान है। यहाँ सुस्वाद पूर्ण कंद-मूल हैं। वृक्षों पर मधु मिलती है। इसे ध्यान में रखकर हमें आज्ञा दीजिएगा।'' श्रीराम जी ने हनुमान के मन की बात समझी। वे हनुमान की माता अंजनादेवी की मनोकामना को भी पूरा करना चाहते थे। वेंकटाद्रि पर विश्राम करने का निर्यण लिया।

वहाँ विश्राम लेते समय श्री रामचन्द्र जी ने तपस्यारत निर्लोम नामक विप्र की पूजा-सेवा स्वीकार की। निर्लोम ने पहले ब्रह्मा की तपस्या की थी। प्रत्यक्ष होकर ब्रह्मा ने उससे वर माँगने के लिए कहा। विप्र ने ब्रह्मलोक प्राप्ति का वर माँगा। इस पर ब्रह्मदेव ने कहा कि श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण समेत यहाँ आनेवाले हैं। उनकी अनुमति से ही तुम ब्रह्मलोक पहुँच सकते हो। ब्रह्मा के वरदान के अनुसार श्री राम जी ने निर्लोम की पूजा को स्वीकारा और उसे ब्रह्मलोक जाने की अनुमति दी। तत्पश्चात् आकाशगंगा तीर्थ में रहनेवाली अंजनादेवी के आश्रम में गये। उनकी पूजाएँ स्वीकार की। तदुपरान्त स्वामी पुष्करिणी पहुँचे। वहाँ सौमित्रि, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान्, नील आदि के साथ पुष्करिणी में स्नान किया। पुष्करिणी की नैर्ऋति दिशा में एक पर्णशाला का निर्माण करवाकर फल भक्षण किया। वानर समूह ने भी वहाँ प्राप्त फल रवाये और मधुपान किया। विहरण का आनंद और श्रांति शमन दोनों उनको मिले।

(वराहपुराण - 41 वाँ अध्याय)

9) वानरों का वैकुण्ठ गुफ़ा प्रवेश

स्वामी पुष्करिणी की ईशान्य दिशा में एक गुफ़ा है। गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, मैंद, द्विविद, सुषेण आदि वानरों ने उस

अंधकारमय गुफ़ा में प्रवेश किया। तिमिरावृत गुफा में बहुत दूर तक गये। अन्त में उन्होंने वहाँ कोटि सूर्य प्रभा से विराजमान एक सुवर्ण नगरी पायी। वह नगरी सुरम्य वनों से, स्फटिक धवल शुद्ध जलों से युक्त स्रवंतियों से, वज्र-वैडूर्य-रत्न-मानिक निर्मित गोपुरों से, अनेक मंगल तोरणों से शोभायमान थी। वहाँ के निवासी चतुर्भुज थे। चार भुजाओं से विलसित वे दिव्य चन्द्रिकाओं को भिखेरने वाली आनंद की कांतियों से विभासित थे। उस पुर के मध्य भाग में दिव्य, सूर्यप्रभा सम प्रकाश से युक्त, मेरु पर्वत तुल्य मनोहर, मणिमय मंटपों से विराजमान, सर्व वाद्य ध्वनियों से गुंजित, नृत्य आदि से रंजित, किन्नेर नाद स्वरों से अनुगुंजित एक विमान को उन वानरों ने देखा। उस विमान में पूर्ण चन्द्र विभा से युक्त वदन से चतुर्भुजी चंख-चक्रधारी, पीतांबरधारी, मणि समूह की महाकन्ति से विराजमान किरीट से शोभित सर्वाभरणधारी सोने के सिंहासन बैठे परमपुरुष को वानरों ने देखा। वे श्री-भू देवियों सहित थे। श्री कौस्तुभ और वैजयंती माला उनके उर पर शोभित थीं। छत्र-चामर आदि से सेवित थे।

अनोखे वैभव से विलसित उस परम पुरुष को देखकर वानर समूह आश्चर्य चकित हो गया। उस अद्भुत पुरुष ने दण्ड उठाकर उन्हें डराया। सभी भयभीत होकर गुफ़ा से बाहर की ओर भागे, उस विस्मयकारी अनुभूति को उन्होंने अन्य वानरों को बताया। सब ने मिलकर सोचा कि राक्षस रावण ने ही ऐसा माया रूप धारण कर उनको डराया होगा। सब मिलकर फिर गुफ़ा को ढूँढने निकले। लेकिन गुफ़ा उन्हें मिली। तब सोचा कि यह पहले गये वानरों का भ्रम

ही था। फिर चुप रह गये। दूसरे ही दिन श्रीरामचन्द्र जी वानर सेना सहित लंका की ओर निकले। वेंकटाद्रि से लंका पहुँचे। रावण संहार किया। सीता सहित अयोध्या पहुँचे। भरत और शत्रुघ्न से मिले। उन्होंने अपने भाइयों से कहा कि स्वामी पुष्करिणी की महिमा से ही सब शुभ प्राप्त हुए हैं। राज सिंहासन पर अधिष्ठित भी हुए।

10) वैकुण्ठ गुफ़ा का प्रभाव

वैकुण्ठ गुफ़ा मुनियों और योगियों का स्थान है। वह दुर्जेय है। परमात्मा की माया शक्ति से वह अज्ञेय भी है। परम पावन की एक लीला के कारण कुछ वानरों को वह ज्ञेय हुई है। कुछ ही को कुछ क्षणों के लिए दर्शन भाग्य प्रदान कर पुनः अज्ञात हो गयी। उस गुफ़ा में वानरों को दर्शन देनेवाले परमानंद रूप नित्य मुक्त थे। वे हमेशा ब्रह्मानंद का अनुभव करते रहते हैं। भगवान के साथ काम रूपों में विचरण करते रहते हैं। सर्वथा भगवान की सेवा और आराधना में अनुरक्त रहा करते हैं। वे सब वेंकटाद्रि के आश्रय में ही रहते हैं। पर्वत पर सामान्य भक्त समुदाय के बढ़ने पर वे उस गुफ़ा में वास कर रहे हैं। अदृश्य रूप में विहरण करते हैं। वानरों को उस अद्भुत गुफ़ा में उन्हीं का दर्शन मिला था। भव्य और दिव्य रूप में विलसित होने के कारण ही उस गुफ़ा का नाम 'वैकुण्ठ गुफ़ा'' पड़ा है।

11) रावणादि राक्षसों से पीडित देवताओं और ऋषियों का श्री महाविष्णु को ढूँढ़ना।

जाबाली, कश्यप, गौतम, अगस्त्य, वामदेव, शतानन्द, आदि मुनि और सनकादि योगी सब हिरण्यकश्यप के वंशज दुरात्मा

रावणादि राश्रसों से व्यथाएँ पा रहे थे। एक बार सब ऋषि समूह अपनी व्यथाओं को निवेदित करने विष्णु के पास पहुँचे। क्षीर सागर की उत्तर दिशा में पहुँच कर भगवान विष्णु को पाने वे उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषियों की प्रार्थना से संतुष्ट होकर शंख-चक्र-गदा धारी की वेषभूषा में एक वैकुण्ठवासी ने उनके सामने आकर कहा - ''हे मुनिवर! आप यहाँ क्यों पहुँचे। कमलापति श्रीमहाविष्णु आजकल यहाँ नहीं हैं। पृथ्वी पर किसी एक विशिष्ट पर्वत पर विहरण करने गये हैं। आप वहीं जाइएगा'', इतना कह कर वह अन्तर्धान हो गया।

क्षीराब्धि को छोडकर रमापति क्यों वहाँ निवास कर रहे हैं? - इसी प्रश्न पर सोचते-सोचते मुनि गण पृथ्वी की ओर चला। मार्ग में उन्हें शुभ्र स्फटिक कान्तियों को भिखेरनेवाली महती को बजाते हुए नारद जी मिले। मुनियों ने उनसे पूछा - ''हे देव मुनीन्द्र! आप कहाँ से इस ओर आ रहे हैं। आप तो त्रिलोक संचारी हैं। उन लोकों का कुछ भी आप की दृष्टि से दूर होने वाला नहीं है। लक्ष्मी वल्लभ आजकल कहाँ रह रहे हैं? रावणादि राक्षस मनुष्य, तापसी, योगी, मुनियों आदियों को असीम कष्ट दे रहे हैं। दुःख पहुँचा रहे हैं। उनको संहारने की शक्ति केवल महाविष्णु को ही है। दूसरा कोई इतना समर्थ नहीं हैं। हमें उनकी शरण में जाना है। कृपा करके हमें बताइए कि महाविष्णु अब कहाँ हैं?'' मुनियों का प्रश्न सुनकर नारद ने कहा - ''हे मुनिवर! मैं भी नारायण के दर्शन की आकांक्षा लोकर परमधाम वैकुण्ठ गया था। वहाँ के विष्णु सेवक ने मुझे विष्णु मूर्ति के भूलोक पहुँचने का समाचार दिया है। वे पृथ्वी पर किसी एक गिरि

शिखर पर लक्ष्मी के साथ विहरण कर रहे हैं। इसी लिए मैं भी वहाँ से लौटकर आ रहा हूँ। चलिए हम सब मिलकर ब्रह्मलोक जायेंगे। वहाँ पितामह से कुछ पता चल सकता है। नारायण अब कहाँ? इसका ज्ञान उन्हीं को होगा।''

भगवान विष्णु से संबन्धित समाचार प्राप्त करने के लिए नारद के साथ मुनि समूह ब्रह्मलोक गये। वहाँ अग्निशिखाओं के समान प्रकाशमान, मूर्तिभूत वेद शास्त्र, गायत्री-सावित्री-सरस्वती त्रय से, किन्नर-किंपुरुष-गंधर्व एवं सिध्द पुरुष संघों से परिवेष्टित, दिक्पालकों से वंदित पद्मासनासीन चतुर्मख ब्रह्मा का उन्होंने दर्शन किया। प्रणमित हुए। ब्रह्मा ने कुशल-मंगलोपरान्त उनके आगमन का कारण पूछा। तब ऋषियों ने कहा - ''हे स्वामी! आप की कृपा से द्दम सब अब तक कुशल हैं। लेकिन रावण नामक राक्षस से असीम व्यथाएँ मिल रही हैं। मंगल कार्य और शुभानुष्ठानों में बाधाएँ उत्पन्न हो रही है। हमारे कष्ट बढ़ रहे हैं। तपस्या में विघ्न पड़ रहे हैं। अब तक हमने कष्ट सहे हैं। अब ऐसी स्थिति हो गयी है कि आगे उनको सहन करना वश की बात नहीं रह गयी है। सर्वोपाय विशारद महाविष्णु ही दुष्ट रावण का संहार कर सकते हैं। लेकिन तीनों लोकों में वे अब कहीं मिल नहीं रहे हैं। हमारे लिए अब आप ही रक्षक हैं। रक्षा प्रदान करें। सब आप की शरण में आये हैं।''- यह सब की प्रार्थना थी।

(वराहपुराण - 43 वाँ अध्याय)

12) चतुर्मुख ब्रह्मा के साथ देवर्षियों का वेंकटाद्रि पर आगमन

तब ब्रह्मा ने ऋषि को रावण वृत्तांत इस प्रकार बताया- ''हे ऋषि प्रवर! रावण ने पहले गंभीर तप किया था। फलस्वरूप मानवेतरों से न मारे जाने का वरदान प्राप्त किया। मनुष्येतरों से अवध्यता वर पाकर वह दुराचारी हुआ। उसके संहार के लिए विष्णु भगवान ही हमारे आधार हैं। वे अब भूलोक में वेंकटाद्रि पर निवास कर रहे हैं। राक्षस वध और रावण वध के लिए हमें उसने ही प्रार्थना करनी है।'' इतना कह कर ब्रह्मा भी विष्णु को ढूँढने ऋषि - मुनियों के साथ निकले।

विष्णु का दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं था। उनको पर्वत शिखरों में, नदि - स्त्रवंतियों में, गुफ़ाओं में ढूँढना था। महाविष्णु को वेंकटाद्रि अत्यंत प्रिय था। वे पशु - पक्षियों आदि अनेक रूपों में वेंकटाद्रि शिखरों पर विचरण करते रहते हैं। गिरि प्रदक्षिणा उनको अत्यंत प्रिय है। इसे ध्यान में रखकर ब्रह्मा ने सलाह दी - ''हे मुनिवर! हम पहले गिरि प्रदक्षण करेंगे। इस के उपरान्त परदेव विष्णु को ढूँढ़ेंगे। दशरथ महाराज भी पुत्र संतानार्थ स्वामी पुष्करिणी तट पर महान तपस्या करेंगे। विष्णु भगवान उनके लिए अवश्य प्रत्यक्ष होंगे।''

ब्रह्मा के वचन सुनकर उनके साथ सब ब्रह्म लोक से शेष शैल पहुँचे। वहाँ के शिखरों आदि में स्नान किये। वेंकटाद्रि पर विराजमान श्रीनिवास की पूजाएँ की। अमृतकल्प द्रुम वृक्षों के फल निवेदित किये। लेकिन कहीं भी गोपुर अथवा विमान मिला। भगवान विष्णु को वे पा नहीं सके।

13) पुत्रार्थी दशरथ जी का वेंकटाद्रि पर आगमन

उसी समय धर्मात्मा दशरथ जी अयोध्या को राजधानी बनाकर पृथ्वी पर शासन कर रहे थे। बहु काल तक उनको पत्र संतान की

प्राप्ति नहीं हुई। वंशोद्धारक पुत्र न होने के कारण वे दुःखी थे। अपने राज गुरु वशिष्ठ के पास जाकर उन्होंने प्रार्थना की - ''हे गुरुवर! आप जैसे महानुभाव को कुलगुरु के रूप में प्राप्त करने पर भी मैं पुत्र संतान रहित हूँ। पुत्र का अभाव मुझे सता रहा है। लगता है कि मुझे कोई पूर्वकृत पाप तंग कर रहा है। मुझे सही मार्ग बताकर सुपुत्र संतान योग के लिए सही कार्य दिशा का निर्देश कीजिएगा।'' सुनकर महर्षि वशिष्ठ कुछ क्षणों तक ध्यान में लीन हो गये। ध्यानोपरांत आदेशवत कहा - ''हे राजेंद्र! आप पुण्यात्मा हैं। आप को कोई पाप सता नहीं सकता। लेकिन मुझे लग रहा है कि आपका कोई पाप इस संबन्ध में प्रतिबन्धक के रूप में रोड़ा बना हुआ है। उस पाप के शमन तथा सुपुत्र प्राप्ति के लिए श्रियःपति श्री वेंकटाधीश की सेवा कीजिए।'' इस पर दशराथ ने गुरु से पूछा - ''श्रियःपति श्री वेंकटेश अब कहाँ हैं? उनका दर्शन भाग्य मुझे कैसे प्राप्त होगा?'' तब वशिष्ठ जी ने कहा - ''हे राजन! भागीरथी नदी के दक्षिण में सौ योजन की दूरी पर सुवर्णमुखी नदी है। उसकी उत्तर दिशा में एक कोस दूरी पर श्री वेंकटाद्रि है। यह पर्वत प्रान्त प्राकृतिक प्रान्त नहीं है। दिव्य क्षेत्र है। अनेक दिव्य तीर्थों एवं पुष्करिणियों से विलसित क्षेत्र है। वैकुण्ठवासी श्रीमन्नारायण के लिए अत्यंत प्रीतिकर प्रान्त है। उस पर्वत श्रेणियों पर श्रीदेवी के साथ श्रीनिवाल नित्य विहारी हैं। हरि दर्शन की कामना लेकर अनेक ऋषि - मुनि वहाँ योग दीक्षा में लीन रहते हैं। देवता, योगी अनेक वहाँ तपस्यारत रहते हैं। स्वयं ब्रह्मा भी उस पर्वत पर लोकानुग्रह की कामना मन में रखकर तपस्या कर रहे हैं। दर्शन मात्र से ही विष्णुमूर्ति सभी के अभीष्टों को संपन्न करते हैं। वहाँ

जाकर उनका दर्शन कीजिए। अवश्य आपकी मनोकामना सिद्धि होगी।''

वशिष्ठ महर्षि के वचन दशरथ के श्रवणों के लिए अमृत तुल्य लगे। कुल गुरु से भी साथ चलने की प्रार्थाना की। सपरिवार दशरथ वेंकटाद्रि पहुँचे। पुण्यतीर्थों में स्नान किया। पाप क्षालित हो गये। पुत्र प्राप्ति की इच्छा लेकर कुछ समय वहाँ रहकर श्रीनिवास की सेवा में रत रहे।

14) दशरथ जी द्वारा स्वामी पुष्करिणी तट पर तपस्या रत मुनियों का दर्शन

उन्हीं दिनों में एक बार दशरथ जी वशिष्ठ के साथ वेंकटाद्रि पर स्वामी पुष्करिणी तट पर पहुँचे। सरोवर अनेक पद्मों और जल चरों से शोभित था। दशरथ का मन आनंद से भर गया। वहाँ अनेक महात्मा तपस्या में लीन मिले। वीरासन, पद्मासन, भद्रासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन आदि अनेक आसनों में वे तपस्या कर रहे थे। उन तापसियों में कुछ पर्ण भक्षी थे तो कुछ वायु भक्षी। कुछ कुंभक, पूरक, और रेचकों का अनुसरण कर रहे थे तो कुछ मुनि विशिष्ट होम संपन्न कर रहे थे। कुछ विष्णु की अर्चना में तल्लीन थे तो कुछ तारक मंत्र जप कर रहे थे। एक मुनि वर्ग के बीच ब्रह्मा भी बघछाले पर आसीन होकर श्रीनिवास के ध्यान में मग्न थे। दशरथ महाराज उस दिव्य वातावरण में ऐसे महानुभावों का दर्शन भाग्य पाकर परवश हो गये और साथ साथ आश्चर्यान्वित भी। सब के सामने वे मुकुलित हस्त हो कर खडे ही रह गये।

(वराहपुराण - 45 वाँ अध्याय)

15) श्रीनिवास का प्रत्यक्ष होना

ऐसे दिव्य वातावरण में दशरथ जी से वशिष्ठ महर्षि ने कहा - ''हे राजन्! देखिए! यहाँ ब्रह्मा भी स्वयं मुनियों के संग में अखण्ड तपस्या में लीन हैं। श्री महाविष्णु का यहाँ शीघ्र आविर्भाव होगा। आप भी पुष्करिणी स्नान से पवित्र होकर जप आरंभ कीजिए।'' महर्षि के संकेत को स्वीकार करते हुए दशरथ जी ने कहा - ''हे मुनिवर! ऐसा ही होगा। परन्तु मुझे आप परम पवित्र मंत्र का उपदेश दीजिए।'' दशरथ जी स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान करके आये। महर्षि ने वेंकटेशाष्टाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया। पुष्करिणी तट पर उपविष्ट होकर मंत्र जप करने लगे।

कुछ समय बीता। एक दिन तपःस्थली पर एक विशिष्ट सुहावनी ध्वनि हुई। सब आश्चर्य चकित हो गये। ध्वनि की दिशा की ओर देखने लगे। धीरे धीरे उस ओर कोटि सूर्य प्रभा समान कांति पुंज दिखाई पड़ा। उस तेज को न देख पाने के कारण से सब ने अपनी आँखें बन्ध कर ली। उस तेजस में समस्त जगत प्रकाशित हो गया। उस प्रकाश राशि के मध्य अनेक गोपुरों से युक्त, स्वर्ण कवाटों तथा मणिमय द्वारों से शोभित एक दिव्य ''विमानम्'' का दर्शन सभी तपस्वियों का मिला। कनक कलशों से शोभित था उसका शिखर! वह मोतियों की लड़ियों से भासित था। पुष्प मालाओं से अलंकृत था। सहस्त्र खंभों से युक्त मंटप विराजमान था। रथ, गज, तुरग पंक्तियाँ विलसित थीं। भेरी, मृदंग नाद सुरम्य था। दिव्य स्त्रियों के लास्य की शोभा से अत्यंत हृदयाह्लाद कारक दृश्य था। वह दिव्य विमान दिव्य कान्तियों को बिखेर रहा था। पशु-पक्ष्यादि भी स्तंभित हो उस विमान

की ओर देखते ही रह गये। तापसी वृन्द अतुलित आनंद की अनुभूति से कर्तव्यविमूढ़ हो गया था। ''विमानम्'' के दर्शन भाग्य से परमानंदित होकर ब्रह्मा ने मिनियों से कहा —

इंद तु दिव्यं परमाद्भुतं शुभं
विमानमिंद्रादिनिषेव्यमाणम्।
विभाति विष्णोरिव मन्दिरं परं
पश्याम सर्वे वयमद्भुतं गृहम्।।

कहते-कहते ब्रह्मा ने ''विमानम्'' में प्रवेश किया। उनके साथ तप में लीन देवता और तापसी भी चले।

(वराहपुराण - 46 वाँ अध्याय)

16) ब्रह्मादि का विमान प्रवेश तथा श्रीनिवास का दर्शन

चण्ड प्रचण्ड आदि द्वारपालकों से अनुमति पाकर देवता, मुनिसमूह, दशरथ आदि सब ने सप्त द्वार पार कर श्रियःपति देवदेव का दर्शन किया। संतुष्ट हृदयी हुए। विमानम् में पुष्प वृष्टि हुई। देव-दुंदुभियों का सुरम्य नाद भक्त-मनों को आकर्षित कर रहा था। सुन कर लोकपालक, पशु, ग्रह, रुद्रगण, यक्ष-नागादि सब अच्युत के दर्शन के लिए आये। उनके मनों में श्रीमन्नारायण के अपूर्व दर्शन की जो उत्कट अभिलाषा थी, वह पूरी हो गयी।

श्रीनिवास श्रीदेवी भूदेवी समेत सब के सामने विराजमान हुए। देवदेव के दक्षिण पार्श्व में पद्मासनासीना लक्ष्मी देवी शोभित थी। सुवर्ण कान्तियों को बिखेरती शरीर छाया से, भृंग पंक्तियों को भी लजा देनेवाली अलकावली की शोभा से, विकसित नव पंकज कान्ति

से भासमान उज्जवल वदन से, तरुण अरुण प्रकाश मण्डित वस्त्रों से, किरीट हार मुकुटालंकृता और नीलांबरधरा श्रीदेवी थीं। वाम पार्श्व में नाना रत्न समाकीर्ण ज्वलन्मुकुट शोभिता, दयारस परिपूर्ण लोचना भूदेवी थीं। ज्वालायुत सहस्त्रार सुदर्शन चक्र तथा शरच्चंद्र धवल पांचजन्य शंख धारण से परिपूर्ण मनोहर दिव्य श्रीनिवास मूर्ति को बार बार निहारनेवली भूदेवी थीं। पीतांबरधारी जगन्नाथ सहस्त्रदल कमल पीठ पर विभासित होकर दया, क्षमा, औदार्य आदि गुणों के मूर्तिमान रूप में प्रकाशित थे। अनन्य और अनादि पुरुषोत्तम के दिव्य मंगलकारी रूप में दर्शन का भाग्य पाकर सब की आँखों में आनंदाश्रु उमड़े। अपने सिक्त नयनों से अश्रुओं को पोंछते हुए सब ने अपने स्तोत्र पाठ से प्रसन्न किया।

17) ब्रह्मादि द्वारा राक्षस रावण के अत्याचारों का निवेदन

स्तोत्र आदि से संतुष्ट श्रीनिवास ने उन से आने का कारण पूछा। चतुर्मुख ब्रह्माने आगे बढ़कर निवेदन किया - ''हे स्वामी! विश्रवसु के पुत्र रावण ने अपनी तपस्या के फल स्वरूप एक वर पाया है। उसके कारण उसको मनुष्येतरों अर्थात् देव, दानव आदि से अवध्यता वर मिला है। वह मानवों के अलावा और किसी से मारा नहीं जायेगा। वह अपनी शक्ति और बल-पराक्रम से सब लोकों को पीडित कर रहा है। उससे बल पाकर अन्य दानव भी ऋषि-मुनियों को सता रहे हैं। इसी कारण से हम सब मिलकर रक्षार्थ आपके शरण में आये हैं। पहले आपको हम न तो आपको वैकुण्ठ में पा सके और न ही क्षीर सागर पर शेषतल्प पर। सुन्दर-सुरम्य-पवित्र वेंकटाचल पर ढूँढते-ढूँढते हम आपकी कृपा से ही आपके पास आ

सके हैं। आप ही हमारी रक्षा का उपाय सोचें। अन्यथा शरणम् नास्ति!'' ब्रह्मा के वचनों द्वारा शरणार्थि - भक्तों के मन को पहचान कर भगवान श्रीनिवास ने आश्वासन भरे शब्दों से उनको सांत्वना दी - ''हे कमलासन! भयभीत मत होना! अवश्य मैं रक्षा का भार वहन करूँगा। कुछ ही समय में लोक कंटक रावण का संहार करूँगा।'' फिर भगवान ने अगस्त्य मुनि की ओर मुड़कर कहा - ''हे महामुनि! आप के आने का कारण क्या है?'' अगस्त्य के सभक्ति वचन थे - ''हे प्रभु! आपके पवित्र दर्शन का भाग्य पाना ही मेरी मनोकामना रही है। वह आज संपन्न हो गयी है। श्रीशैल पर्वत प्रान्त में कुछ असुर समूह अपने लिए अनुकूल वर प्राप्त कर मुनियों और सामान्यों पर अत्याचार कर रहा है। आपके सान्नध्य में ही इस प्रकार के अत्याचार हों, यह कहाँ तक न्याय और धर्म सम्मत है प्रभु! आपके भक्तों और जनों का दस्यों द्वारा पीडित होने पर भी आपकी उपेक्षा कहाँ तक समीचीन हैं? आपके कटाक्ष और अनुग्रह से ही सब को सुख मिल सकता है।''

मुनियों की व्यथा सुनकर भगवान ने आश्वासन दिया - ''हे मुनिवर! आप को डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। दुष्टों का संहार कर सब की रक्षा अवश्य करूँगा। अपने आश्रित भक्तों को आरोग्य, सुख-संपत्ति, संतान और शतायु अवश्य प्रदान करूँगा।'' तत्पश्चात् सनकादियों की ओर देखकर उनके कार्य के बारे में पृच्छित किया तो उनका निवेदन रहा - ''हे स्वामी! हमें कुछ नहीं चाहिए। फिर भी हमारा निवेदन है कि आपका यहाँ अदृश्य रूप में रहना भक्तों के लिए कष्टदायक है। इस से आप को किस प्रकार का

प्रयोजन सिद्ध हो रहा है उसे हम नहीं जान पा रहे हैं। हम इसे जानना भी नहीं चाहते है। हमारी इच्छा है कि आप यहाँ गोचर रूप में रहिएगा।'' तदुपरान्त देवदेव ने देवेन्द्र से पूछा। इन्द्र की विनती यह रही - ''हे गोविन्द! हम रावण से पीडित हो कर एक स्थान पर नहीं रह पा रहे हैं। कृपा कर उससे विमुक्ति शीघ्र दिलाइएगा।'' सुनकर श्रीमती ने कहा कि शीघ्र ही यह कार्य होगा। तब जाकर शंकर भगवान की ओर मंद मुस्कान बिखेरते हुए उनसे पूछा - ''आप किस कार्य भार लेकर यहाँ पधारे हैं?'' शंकर ने अपने मन की बात वही - ''हे वेंकटेश्वर! आप जहाँ रहते हैं वहीं रहने की मेरी अमित लालसा है।'' इस पर श्रीनिवास ने प्रत्युत्तर में कहा - ''हे शंकर! हे शुभंकर! कल्पांत तक मैं वेंकटाद्रि पर रहूँगा। आप भी आग्नेय दिशा में रहते हुए भक्तों की रक्षा में रत रहिएगा।''

अन्त में राजा दशरथ की बारी आयी। दशरथ ने निवेदित किया - ''हे भगवन्! आपकी कृपा से मैं ने बहुत काल तक राज्य सुख पाया है। यथा संभव दान-धर्म आदि किये। पर मुझे पुत्र संतान का अभाव दुःख दे रहा है। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति। मुझे सत्पुत्र प्राप्ति का वर दान दीजिएगा।'' दशरथ की प्रार्थना पर वेंकटेश्वर ने कहा - ''हे राजा! अपने अपने पूर्व जन्म में महा पाप किया है। इसी कारण अबतक आपको पुत्र की प्राप्ति नहीं मिली। मैं क्या कर सकता हूँ?'' भगवान के वचन सुनकर दुःखित हुए। फिर विनम्र भाव से दशरथ ने कहा - ''हे लक्ष्मीपति! यह क्या बात है? आप की बात मुझे आश्चर्य में डुबो रही है। आप के दर्शन के बाद भी क्या संचित पाप रह जायेगा? श्रुति की उक्ति है - 'क्षयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्

दृष्टे परावरे'। सूर्योदय के बाद भी क्या अंधकार रह सकता है?'' दशरथ के भक्ति सिंचित वचनों से प्रसन्न होकर श्रीनिवास ने कहा - ''हे राजोत्तम! आपकी भक्ति और विनम्रता से मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ। आप को शूर, वीर बलवान तथा पराक्रमी चार पुत्र होंगे। आप अयोध्या जाकर पुत्रकोमष्टि यज्ञ कीजिए।''

राजा दशरथ प्रभु के वचनों से अत्यंत उल्लसित हुए। श्रीनिवास के प्रदक्षिण - नमस्कारोपरान्त उनसे आज्ञा लेकर परिवार और बन्धुवर्ग सहित अयोध्या लौटे।

(वराहपुराण 49 - वाँ अध्याय)

18) चतुर्भुज की प्रार्थना के अनुसार भगवान विष्णु का वेंकटाद्रि पर सर्व भक्त जन सुलभ दर्शनार्थ बसना स्वीकार करना

ऋषि - पुनि, देवता समूह, राजा दशरथ आदि के निष्क्रमण के बाद ब्रह्मा से श्रीनिवास ने कहा - ''हे चतुर्भुज! तुम अब भी यहाँ क्यों ठहरे हो? कालातीत हो रहा है। तुम भी अपनी अभीष्ट बात बताओ। अवश्य पूरा करूँगा।'' तब ब्रह्मा ने कहा - ''हे श्रीनिवास! आपने मेरी कामना पूरी करने की बात कही है। कृतार्थ हूँ। आप को इस रूप में अप्रकटित होकर नहीं रहना चाहिए। कलि युग में तो सब जन तपस्या कर आपका दर्शन पा नहीं सकेंगे। दीर्घकालीन तपस्या और योग की शक्ति उन में नहीं रहेगी। कलियुग में तो लोग अपने अपने धर्म नहीं जानते। इतना ही नहीं वे दुर्बली, रोगी, काम - पीडित, पशु प्राय और पाप प्रवृत्ति के होंगे। उनकी उपेक्षा करेंगे तो वे सब नरक में जाएँगे। उन सब के लिए उतने नरक नहीं होंगे जितने चाहिए।

अनेक नरकों की सृष्टि करनी पडेगी। इसलिए हे करुणामय! आप को ही अनुग्रह पूर्ण मार्ग दिखाना होगा। उनको आपका दर्शन भाग्य मिलेगा तो उनके पाप शमित होंगे। तदर्थ आप को अपने दृश्य रूप में सदा रहना है। यही मेरी एकमात्र प्रबल इच्छा है।''

ब्रह्मा के दया मिश्रित वचनों से श्रीनिवास को अत्यंत संतोष हुआ। उन्होंने पुत्र वात्सल्य से तर होकर ब्रह्मा से कहा - ''हे पद्मासन! मैं तुम्हारी सर्व जीव दयापरता से अत्यंत संतुष्ट हूँ। तुम्हारी इच्छा के अनुरूप मैं सर्व जन प्रिय रूप में यहाँ रहूँगा। सब की कामनाओं को संपन्न करूँगा। श्रीदेवी और भूदेवी सहित मैं वेंकटाद्रि पर वास करूँगा। यहाँ तपस्या और यज्ञ - यागादि सब सर्व सुलभ रहेंगे। इह लोक में व्याप्त सभी तीर्थों के माहात्म्य से युक्त होने के कारण इस पुष्करिणी का स्वामी पुष्करिणी नाम सार्थक बनेगा। गंगादि पुण्य तीर्थ इसी से उत्पन्न हैं। इस के जलों में स्नान पाप नाशक है। भक्तों की इच्छाएँ समुचित रूप से संपन्न होंगी। मुझ पर विश्वास और भक्ति रखकर स्नान करनेवाले भक्तों की मनोकामनाएँ सिद्ध होंगी। भक्त निर्भय रहेंगे।''

भगवान के सात्वना देनेवाले मधुर वचनों को सुनकर ब्रह्मा आनंद से पुलकित हुए। कहा - 'हे नाथ! आपने मुझ पर प्रेम और दया रखकर सर्व जनों के उद्धार का व्रत स्वीकारा है। मैं कृतार्थ हो गया हूँ। प्रभु! इस प्रान्त में दुष्ट राक्षस हैं। सामान्यों को सता रहे हैं। उनके दलन का भार भी आपका ही है।'' श्री वेंकटाचलाधीश ने अपने सुदर्शन चक्र को रिपु दलन का आदेश दिया। उस प्रान्त को सुदर्शन चक्र ने रिपु रहित कर दिया। वेंकटाचल प्रान्त प्रशान्त क्षेत्र बन गया।

19) श्रीनिवास का ब्रह्मोत्सवों के संबन्ध में ब्रह्मा की विनती स्वीकारना

इतना प्राप्त करने के उपरान्त भी ब्रह्मा वहीं खडे रहे। इस पर वेंकटेश्वर ने उनसे पुनः पूछा - ''चतुर्मुख! अब और माँगने के लिए क्या रह गया है?'' पद्मासन ने विनम्र भाव से कहा - ''हे स्वामी! अब एक कामना रह गयी है। आशा से अधिक विश्वास है कि आप अवश्य मानेंगे। ध्वजारोहण पूर्वक आपके लिए महत् उत्सवों को मनाने की चाह है। इस की अनुमति आप प्रदान करें।'' भगवान ने ब्रह्मा को अपनी स्वीकृति दी।

ब्रह्मा ने विखनस और अन्य मुनियों से विचार - विमर्श किया। ध्वजाराहेण पूर्वक उत्सव कन्यामास में संपन्न करने का निश्चय लिया गया। समस्त देवताओं, ऋषि मुनियों तथा भक्त लोक को आमंत्रित करने का भी निर्णय हुआ। उत्सवों के दर्शन मात्र से महत् पुण्य प्राप्ति होने की बात भी हो गयी।

सर्व देशों और सर्व लोकों के भक्त जन और देवता समूह का आमंत्रित किया गया। सब गोविन्द नामोच्चारण के साथ वेंकटशैल पर आने लगे। मार्ग मध्य में यात्रियों के लिए पेय जल - केन्द्रों, भोजन शालाओं और विश्राम केन्द्रों की योजनाएँ की गयीं।

चतुर्भुज ने वेंकटाचल पर उत्सवों में भाग लेने आनेवाले भक्तों के लिए विश्वकर्मा से योग्य गृह समुदाय निर्माण करवाया। गंधर्व, किन्नर, किंपुरुष, अत्प्सराएँ आदि ने उत्सवों में अपनी - अपनी कलाओं के प्रदर्शन के लिए तैयार हुए। महा वैभव के साथ कार्यक्रम की योजना बनी।

20) श्री वेंकटेश्वर भगवान का महोत्सव वैभव

श्रीनिवास के दिव्योत्सव के दिन वैभवपूर्ण रहे हैं। ब्रह्मा ने घृत, सूप, गुड आदि से मुद्गान्न, माषान्न, कृसरान्न, मरीच्यन्न, गोधूमान्न, शाल्यन्न, पायसान्न आदि अनेक अन्न तैयार कराये। साथ साथ अनेक व्यंजन और विविध फल मँगवाकर स्वामी को निवेदित किये गये। उच्चैःश्रव, ऐरावत, अनन्त व गरुड़ पर अधिरोहित करा कर विविध वाद्य धोष तथा छत्र - चामर सेवाओं के साथ तिरु वीथियों में शोभा यात्राएँ करायी गयीं। इन यात्राओं से देवता, मुनि, भक्त समूह आदि सब का दर्शन सुलभ हो गया। उत्सवों के दिनों में गायक वृन्दों ने भक्ति गीतों से, वेदविदों ने वेद पाठ से आराधना विधान को और समुन्नत बनाया। देवता ओं ने पूजाएँ अर्पित की। याग शाला में मुनियों ने यज्ञ संपन्न किये। पूर्णकुम्भ स्थापित किये गये। वैखानस ने विधि - विधान का निर्णय किया था। उपयुक्त विधि के अनुसार सभी दिशाओं में दिग्बलियाँ दी गयीं। शोभा यात्राओं में श्रीदेवी और भूदेवी समेत श्रीनिवास ने तिरुवीथियों में भक्तों को दिव्य दर्शन दिये। उज्ज्वल छत्र ध्वज छाया में गंधर्व सेवाओं के साथ एक दिवस पर रथारूढ हो तिरुवीथियों में श्रीनिवास ने भक्तों को आनंद प्रदान किया। उत्सवों के उपरान्त वे यथास्थान पर शोभित हुए।

21) श्री वेंकटश्वर के महोत्सवों का सेवाफल

तब श्रीनिवास ने ब्रह्मा को बुलाकर कहा - ''हे सरस्वती वल्लभ! तुमने सभक्ति पूर्वक जिस रूप में उत्सवों का निर्वाह किया उससे मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। इसी प्रकार देवता, मुनि, मानव सब मिलकर हर वर्ष कन्या मास में मेरे उत्सव मनोयेंगे तो सामान्य भक्तों को

स्वार्गिक आनन्द मिलेगा। उनकी कामनाएँ अवश्य पूरी होंगी। अन्त में ब्रह्म लोक प्राप्त करेंगे। इन महोत्सवों में भाग लेने और दर्शन करने की इच्छा मन में रखकर जो शेषगरि पर कदम रखेगा उसे हर कदम पर वैकुण्ठ प्राप्ति फल की अनुभूति मिलेगी। इन उत्सवों के समय जो पेय जल प्रदान केन्द्र (प्यास बुझाने के लिए शुद्ध पानी की व्यवस्था) स्थापित करेगा उसे मेरा अनुग्रह मिलेगा। इन उत्सवों के समय जो अन्नदान व्यवस्थाएँ करेगा उसे सप्तपुरुषांतरों तक अन्न समृद्धि प्राप्त होगी। उसके सर्व पक्ष संपन्न रहेंगे। शास्त्र विदित और प्रोक्त दान करने पर उसे ऐहिक सुख प्राप्त कराकर अन्त में वैकुण्ठ वास प्राप्त कराऊँगा। यहाँ पर भूदान कैंकर्य करानेवालों को मेरे सदन का वास अवश्य मिलेगा। विद्यादान करानेवालों को तीनों लोकों में यश मिलेगा।

(वराहपुराण - 51 अध्याय)

22) वेंकटाद्रि पर पुष्प वाटिकाओं के निर्माण - फल

वेंकटाद्रिश ने आगे इस प्रकार कहा - ''हे विबुधवर! सुनिए। वेंकटाद्रिपर वृन्दावनों, उद्यानवनों, पुष्पवाटिकाओं को बढ़ाकर उन से प्राप्त फूलों और तुलसी दलों से मुझे अर्चित करनेवाले ऐहिक और आमुष्मिक सुख पाकर संतुष्ट रहेंगे। इतना ही नहीं अन्त में मोक्ष प्राप्त करेंगे। उनकी वंश वृद्धि होगी। प्रति दिन सव्यंजन नैवेद्य अर्पित करनेवाले भक्तों को पुण्य लोक प्राप्ति होगी। इह लोक में समस्त संपत्तियाँ सुलभ होंगी। मणि - माणिक्यों को समर्पित करनेवालों को विद्यायोग होगा। सर्वाभरण प्रदान करनेवाले भक्तों को पुत्र और ऐश्वर्य मिलेगा। नित्यव्रत दीक्षापरों को तुलसी दलार्चना से प्रसन्न

होकर लक्ष्मीयुत होकर मैं उनके गृहों में वास करूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है। जो भक्ति भावना से वेंकटाद्रि पर स्वामी पुष्करिणी में स्नात होकर मुझे नमस्कार करेगा उसकी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी।'' अपने इस निर्णय को स्पष्ट रूप से घोषित करके देवदेव श्री भू समेत 'विमानम्' में प्रविष्ट हुए। ऋषि, मुनि, देवता समूह आदि सब ने एक साथ जयनाद किया। इस प्रकार चतुर्भज ब्रह्मा द्वारा संकल्पित, नियोजित, परिचालित तथा संपन्न किये गये उत्सवों का शास्त्र सम्मत समापन भी हुआ।

23) महोत्सवावभृथ स्नान : समापन का पवित्र चरण

भगवान के आविर्भाव का नक्षत्र श्रवण नक्षत्र था। इस नक्षत्र से युक्त दिन पर पाप परिहारक स्वामी पुष्करिणी में अवभृथ की भी परिकल्पना ब्रह्मा ने की। देवता, योगी, मुनि, राजा, भक्त आदि सभी ने उत्सव समाप्ति को एक महा यज्ञ मानकर यज्ञांत स्नान किया।

स्नानोपरान्त योगी सनक ने कहा - ''हे भक्त जन! सुनिए! समस्त तीर्थ भूत चक्री के अवभृथ संदर्भ में जो भी पुष्करिणी में पवित्र स्नान करेगा वह अनन्त पूर्व जन्मों के संचित पाप से मुक्त होगा।'' सभी देवताओं ने स्वामी पुष्करिणी के माहात्म्य की प्रशंसा करते हुए श्रीनिवास को साष्टांग प्रणाम अर्पित किये।

ब्रह्मा द्वारा संपन्न किये गये इस महोत्सव संरम्भ से प्रसन्न होकर श्री वेंकटेश ने उनसे कहा - ''हे कमलसंभव! अब मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी मनोकामना अब क्या रह गयी है?'' इस पर सृष्टिकार्ता ने सविनय निवेदित किया - ''हे भगवान्! आपकी कृपा के

अलावा मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप यहीं वास करते हुए भक्त जनों पर भी उसी प्रकार की कृपा दृष्टि रखकर वरदान प्रदान करते रहिएगा।'' भगवान ने ''तथास्तु'' कहा। तभी सबने अपने - अपने स्थानों के लिए प्रस्थान किया।

(वराहपुराण - 52 वाँ अध्याय)

24) फलगुणीतीर्थ माहात्म्य

सनकादि योगियों ने पाप नाशन तीर्थ पर अपना वास बना लिया। सप्त ऋषि उसकी ईशान्य दिशा में फल्गुणी तीर्थ पर आश्रमों का निर्माण करने रहने लगे। अरुंधती की तपस्या से संप्रीता होकर कमलालया लक्ष्मी देवी ने फाल्गुण मास की पूर्णिमा के दिन प्रत्यक्ष होकर अनेक वर प्रदान किये। अरुंधती की इच्छा के अनुसार उस तीर्थ को फल्गुणी तीर्थ नाम देना भी लक्ष्मी जी को मान्य हो गया। फल्गुणी नक्षत्र युक्त फाल्गुण (फागुन) महीने की पूर्णिमा के दिन पर जो इस तीर्थ में स्नान करते हैं उनके घरों में लक्ष्मी जी स्वयं रह कर काम्यार्थ संपन्न करेंगी। कुछ देवता इस तीर्थ की महत्ता को समझ कर वहीं रहने लगे।

25) जाबाली तीर्थ माहात्म्य

फल्गुणी तीर्थ की पश्चिमोत्तर दिशा में जाबाली महामुनि आश्रम बसा कर तपस्या रत रहे। उसी प्रान्त में अगस्त्य मुनि ने एक सुन्दर उद्यानवन का निर्माण कर शिष्यों सहित वहाँ रहने लगे। अनन्त काल तक वे श्री वेंकटेश की आराधना उद्यानवन के फूलों से करते रहे। कृत, त्रेता और द्वापर युगों में भगवान के अनेक उत्सवों उन्होंने

भाग लिया। युग युग पर्यन्त भक्तों को इच्छा वर प्रदान करते हुए भगवान वेंकटेश श्री भूदेवी सहित वेंकटाद्रि पर विराजमान हैं।

(वराहपुराण - 53 वाँ अध्याय)

26) श्री वेंकटेश और कलियुग

श्री वेंकटपति कलियुग में मौनव्रत धारी हैं। परन्तु मानवों के लिए अर्चावतारी रहेंगी। वैकुण्ठ से आया दिव्य विमान तिरोहित हो जाएगा - ऐसा निर्णय हुआ। कलियुग में भक्त उनके लिए नये 'विमानम्' का निर्माण करेंगे। भक्त कोटि उनकी आराधना अर्चावतारी के रूप में ही करेगी। वेंकटेश भगवान सब को देखते हुए भी लगेंगे कि वे देख नहीं रहे हैं। वे किसी से प्रत्यक्षतः वार्तालाप नहीं करेंगे। उनमें निग्रह - अनुग्रह आदि शक्तियाँ तो अवश्य पूर्ववत रहेंगी।

कलियुग की विशेषता है कि इस में वरदानों का पक्ष अधिक रहेगा। मानव निर्मित विमान में रहने और वर प्रदान का आधिक्य के रहने पर भी दर्शन फल की महत्ता अधिक रहेगी। दर्शन मात्र से पाप राशि का शमन विशिष्टता का सूचक है। भगवान वेंकटेश्वर अन्य रूपों और अन्य मार्गों में भक्तों को अपनी स्थिाति का द्योतन करते ही रहेंगे।

भक्ति से परिपूर्ण किंचित दान और स्वल्प पूजा से ही प्रसन्न होनेवाले भगवान वेंकटाद्रि की यात्रा मात्र से भक्त सुलभ हो जाते हैं और अभीष्ट सिद्धि प्रदान करते हैं। यद्यपि प्राकृत रूप में अर्थात् भगवान के निज रूप में उनका दर्शन उपलब्ध नहीं होता है, फिर भी उनकी कृपा प्राकृत सिद्ध स्वरूपा रहेगी। उनकी। कृपा प्राप्ति के लिए मानव विविध उत्सव मनाते हैं अथवा उत्सवों में भाग लेते हैं।

कलियुग परदैव श्रीवेंकटेश्वर की सेवा के लिए देवता भी वेंकटाचल आते रहते हैं। स्वामी पुष्करिणी स्नान कर अपना अपना निवेदन अर्पित करते हैं। वे मानवों के लिए अगोचर रहेंगे। देवता गण अन्न प्रसादादियों को स्वीकार कर अनुभव करते हैं कि हमें भी नर जन्म प्राप्त हो जाय तो अच्छा होता।

कलियुग में श्री वेंकटेश्वर की ख्याति विशेष रूप में फैलेगी। सब मानव जातियों और वर्गों में उन पर भक्ति उपजेगी। भक्तों की इच्छाएँ शीघ्र पूर्ण होंगी। भारतीय मात्र नहीं खण्डातर वासी भी भक्ति भावना से ओतप्रोत होकर वेंकटाचल दर्शनार्थ पहुँचेंगे। सुवर्ण गरि अप्राकृतिक होने पर भी प्राकृताचल समान दिखाई देगी।

भगवान श्री वेंकटेश्वर पर हिन्दू धर्मेतर समुदायों में भी भक्ति भावना विकसेगी। कलियुग नाथ होकर भगवान भक्त जन प्रियंकर होगें। उनकी सेवा भूषणवत प्रकाशवान सिद्ध होगी। कलिदोष परिहार के लिए वेंकटेश की सेवा अनुपम सिद्ध होगी -

वेंकटेशसमो देवो नास्ति नास्ति महीतले।
स्वामिपुष्करिणीतीर्थ समं नास्ति न चास्ति वै।

कलियुग में श्री वेंकटेश्वर द्रव्यार्जन पर होंगे। लोकानुग्रह कारक रहेंगे। भक्तों से मूल्य ग्रहण कर अमूल्य अभीष्ट सिद्धियाँ प्रदान करेंगे। भगवान जनता के मनों में विहरनेवाले क्रीडा विनोदी हो कर कलियुग पर्यन्त विराजमान रहेंगे।

27) सनकसनंदन तीर्थ माहात्म्य

पापनाशन तीर्थ की उत्तर दिशा में अद्धि कोस की दूरी पर परम पावन सनकसनंदन तीर्थ है। मार्गशीर्ष मास शुक्ल दशमी तिथि

के अरुणोदय में स्वामी पुष्करिणी तीर्थ में स्नात होकर त्रयोदशी के दिन पर सनकसनंदन तीर्थ में पुनः स्नान के पश्चात् श्री वेंकटेश्वर का अष्टाक्षरी जप सद्यः सिद्धि प्रदायक है।

28) कायरसायन तीर्थ माहात्म्य

सनकसनंदन तीर्थ के समीप ही कायरसायन तीर्थ है। इस तीर्थ में स्नान और जल के पान से देह की शुद्धि होगी। यह तीर्थ शिला से पिहित (अच्छादित) है। महात्मा और योगि पुंगवों के लिए उसका दर्शन भाग्य प्राप्त होता है।

(वराहपुराण 60 - वाँ अध्याय)

पुण्यं पवित्रमायुष्यं माहात्म्यमिदमुत्तमम्।
यः पठेत्प्रियतो भक्त्या श्रुणुयाद्वा लिखेदपि।।
सर्वान्न् कामानवाप्नोति संप्राप्नोति च मंगलम्।

(वायुपुराण 61 वाँ अध्याय)

प्रथमाश्वास संपूर्ण

* * *

द्वितीय आश्वास

वेंकटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किंचन ।
वेंकटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति ।।

1) वेंकटाद्रिमाहात्म्यम्

देवता, ऋषि, मुनि आदि इसे परमात्मालय मानते हैं और कहते भी हैं। यह कृत युग में अंजनाद्रि, त्रेतायुग में नारायणाद्रि, द्वापर युग में सिंहाद्रि तथा कलियुग में वेंकटाद्रि अभिधानों ने व्यवहृत हैं। सहस्त्र योजन पर्यन्त प्रवासी और द्वीपांतरवासी भक्त अगर इस की दिशा की ओर मुड़कर भक्ति से नमस्कार करेंगे तो सर्व पाप मुक्त होंगे और अन्ततोगत्वा विष्णुलोक प्राप्त करेंगे।

2) कुमारधारातीर्थ माहात्म्यम्

मखा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन कुमारधारा तीर्थ लोक पावन रूप में विराजमान होता है। उस दिन की मध्याह्न वेला में इस तीर्थ में स्नान गंगादि सर्व तीर्थ स्नान-फल प्रदान करनेवाला है। इस तीर्थ में सदक्षिणा पूर्वक अन्नदान - फल भी तत्समान ही होगा।

3) तुंबुरुतीर्थ माहात्म्यम्

उत्तर फल्गुणी नक्षत्र युक्त फालगुणी (फागुन) पूर्णिमा के दिन तुंबुरु तीर्थ स्नान से पुनर्जन्म रहिता प्राप्त होगी।

4) आकाशगंगातीर्थ माहात्म्यम्

चित्ता नक्षत्र युक्त चैत्रमास (चैत) पूर्णिमा के प्रातःकालीन आकाशगंगा तीर्थ स्नान मोक्ष प्रदायक है।

5) **पाण्डवतीर्थ माहात्म्य**

वैशाख मास के द्वादशी का दिन और उस पर आदित्यवार (रविवार) का होना पाण्डव तीर्थ स्नान के लिए अत्यंत शुभप्रद माना जाता है। यह इहपर सुख प्रदायक है।

6) **पापनाशनम् तीर्थ माहात्म्य**

पुष्यमी नक्षत्र अथवा हस्ता नक्षत्र से युक्त सप्तमी रविवार के दिन प्रातःकालीन पापनाशनम् तीर्थ का पुण्य स्नान कोटि जन्म संचित पाप का विनाशक है।

7) **देवतीर्थ माहात्म्य**

श्रीनिवास के विमान की वायव्य दिशा में गिरि की एक गुफ़ा में देवतीर्थ विराजमान है। पुष्यमी नक्षत्र युक्त गुरुवार के दिन अथवा श्रवणा नक्षत्र युक्त सोमवार के दिन व्यतीपात पुण्यकाल में इस तीर्थ में स्नान ज्ञान - अज्ञान कृत पापों का हरण करनेवाला और पुण्य वृद्धिकारक है। पुत्र - पौत्राभिवृद्धि फलदायक भी है। मरणोपरान्त स्वर्ग प्राप्ति लाभ भी इस स्नान से निर्देशित है। उस दिन पर वहाँ अन्नदान करनेवालों को यावत् जीवन अन्नदान फल प्राप्ति निश्चित है।

(वराहपुराण - प्रथम अध्याय)

8) **आकाशराजा का जन्म वृत्तांत**

राजा विक्रमार्क के मरणोपरान्त बहुत समय बाद जन्द्रवंश के मित्रवर्मा नामक चक्रवर्ति तुंडीर मंडल के नारायणपुरम् पर शासन कर रहे थे। उनके शासन में पृथ्वी समस्त संपत्तियों से विलसित थी। सारी प्रजा धर्मयुक्त और सुपंथ चल रही थी। पांड्य वंशजा

मनोरमा मित्रवर्मा की धर्मपत्नी थी। उस पुण्य दंपति के सुपुत्र थे आकाश। शक वंशजा धरणी नामक राज कन्या से उनका विवाह संपन्न हुआ। राजकुमार आकाश को राज्य भार सौंपकर वार्द्धक्य के कारणे मित्रवर्मा तपस्या के लिए समीपवर्ती वेंकटाद्रि पहुँचे।

9) **श्री पद्मावती का जन्म वृत्तांत**

आकाश राजा यक्ष के लिए मारणी तट पर भूमि का शोधन कर सुवर्ण लांगल (हल) से खेत जोतने लगे। तब सर्व लक्षण संपन्ना स्त्री शिशु भूमि से उत्पन्न हुई। एक सुन्दर पेटिका में पद्मशय्या पर वह शोभित थी। मंद मंद स्मितियाँ बिखेरनेवाली उस शिशु को देखकर आकाशराजा पहले आश्चर्य चकित हुए। आनंद विभोर होकर उस लाडली को अपनी पुत्री कहकर पुकारा और स्वीकारा। तब आकाशवणी भी हुई - ''हे राजन्! वास्तव में यह आप की तनया ही है। उसे स्वीकार कर पालन - पोषण कीजिएगा।'' राजा महल में पहुँचे। राणी धरणी देवी के हाथों में पुत्री को सौंपकर उन्होंने कहा - ''हे देवी! दैव योग से यह बच्ची हमें भूमि गर्भ से प्राप्त हुई है। इस पुत्री को स्वीकारेंगे। देखिए इस में कितनी अपूर्व सौंदर्य झलक है। संतान रहित हमारे लिए यह देवदत्त पुत्री है।'' धरणी देवी ने संतोष के साथ पुत्री को अपने हाथों में लिया। पद्म दलों के बीच उद्भवित होने के कारण उस शिशु का नाम पद्मावती रखा गया। उसका प्रिय नाम पद्मिनी था।

10) **वसुदास का जन्म वृत्तांत**

आकाशराजा के मंदिर में पद्मावती का पहुँचना शुभ का ही संकेत था। कुछ ही दिनों में धरणी देवी गर्भवती हुई। शुभ नक्षत्र में

उनको एक पुत्र हुआ। उस पुत्र को जातकर्मादि के साथ वसुदास नाम रखा गया। लडका शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा। उपनयन संस्कार के अनन्तर अध्ययन आदि संपन्न हुए। राजकुमार वसुदास ने अपने पिता आकाश राजा से ही अनेक अस्त्र - शस्त्र विद्याएँ प्राप्त की। युद्धविद्या प्रवीण पुत्र के बल - पराक्रमों से आकाश राजा शत्रुओं से अजेय रहे।

(वराहपुराण - 1 रा अध्याय)

11) नारद मुनि द्वारा श्री पद्मावती देवी की हस्तरेखाओं को परखना

आकाशराजा की पुत्री पद्मावती समय की गति के साथ रूप - यौवन - संपन्ना युवती बनी। एक दिन अपनी सहेलियों के साथ उपवन में घूम रही थी। यादृच्छिक रूप से नारद मुनि ने पद्मावती को देखा। उसके सौंदर्य को देखकर मुनि आश्चर्यान्वित हुए। उन्होंने पूछा - ''आप किनकी पुत्री हैं?''

''मैं आकाशराजा की पुत्री हूँ।'' - पद्मावती का उत्तर था।

पूछताछ आगे बढ़ी - ''अपना हाथ बताइए!''

''महर्षि यह मेरा ही सौभाग्य होगा। रेखाएँ परख कर मेरा भविष्य बताइएगा।''

नारद ने पद्मावती की हस्त - रेखाएँ देखकर कहा -

''लग रहा है कि आप साक्षात् लक्ष्मी जी ही हैं।
विष्णु पत्नी होने के सारे लक्षण दिखाई दे
रहे हैं। लोकेश्वर रमापति ही आपके पति होंगे।''

पद्मावती को परम आनंद की अनुभूति हुई। अर्घ्यपाद्यादि से नारद मुनि की पूजा की। नारद जी संतुष्ट होकर अन्तर्धान हो गये।

12) सखियों के साथ पद्मावती का उद्यानवन में जाना

एक दिन पद्मावती की सखियों ने उनसे कहा - ''हमारा उपवन विकसित पुष्पों से मनोहर है। चलिए, हम सब मिलकर उसका आनंद लेंगी।'' सब पुष्पवाटिका पहुँचीं। फूलों का चयन करने में लीन हो गयीं। इतने में सखियों को शुभ्र दंत द्वय से शोभित मस्त एक हाथी अपनी सूँढ से पानी बिखेता हुआ उधर दौडता दिखा। सब सहेलियाँ भयभीत हो वृक्षों के पीछे छिप गयीं।

13) श्रीनिवास का मृगया - विनोद मिस उसी उपवन की ओर आना

उसी समय पुंडरीक नयन, पद्मसम मणियुक्त कुडलधारी, रत्न कंकणों से विभूषित, सुवर्ण कटिसूत्र से शोभित, स्फुरित स्वर्ण यज्ञोपवीत से विलसित एक युवक उस ओर मृगया - विनोदार्थ चलते हुए उस उद्यानवन में पहुँचा। श्याम शरीर से प्रकाशवान धवल अश्व पर आरूढ़ सुन्दर वपुधारी युवक था। तेज गति से मृगों के अन्वेषण में रत था। उस उज्ज्वल रूप को देखते ही हाथी ने झुक कर सूँढ़ उठाकर घींकार किया। तुरत मुड़कर वन की ओर चला गया।

युवक ने पुष्पचयन करनेवाली कन्याओं के पास जाकर पूछा - ''हे कन्याओं! कोई मृग इस ओर आया क्या? तुम लोगों ने देखा है तो मुझे बताना।''

''हम लोगों ने किसी भी मृग को नहीं देखा है। तुम धनुर्धारी होकर इधर क्यों आये? यहाँ मृग अवध्य है। वन्य प्राणियों को मारना हमारे यहाँ मना है। यह उपवन है। आकाशराजा के अधीन में यह प्रान्त है। तुम तुरन्त इस प्रान्त को छोड़ कर चले जाओ।'' पद्मावती

की सखियों का उत्तर सुनकर युवक ने पूछा - ''आप लोग कौन हैं? सर्वांग सुन्दरी वह कन्या कौन हैं? आप से इस प्रश्न का समाधान मिलते ही मैं यहाँ से निकल जाऊँगा।''

इस पर पद्मावती के संकेत से एक सखी ने उत्तर दिया - ''यह कन्या भूमिजा हैं। आकाशराजा की तनया है। नाम पद्मावती है। हमारी नायिका है। तुम कौन हो? तुम्हारा वास स्थान क्या है? तुम्हारा वंश क्या है? तुम इस ओर क्यों आये हो? पहले तो यह सब हमें बताओ?''

प्रश्नावली सुनकर मंदस्मित होकर युवक ने प्रत्युत्तर दिया - ''कहते हैं हमारा वंश दिवाकर वंश है। मानवों के लिए प्रिय और पवित्र लगनेवाले मेरे अनेक नाम हैं। वर्ण के कारण मुझे कृष्ण कहते हैं। मेरा चक्र ब्रह्मद्वेषियों और असुरों के लिए भयकारक है। मेरे शंख की ध्वनि सुनकर शत्रु अपनी स्पृहा खो बैठते हैं। मेरे धनुष के समान धनुषदेवताओं में और किसी के पास नहीं है। मैं वेंकटाद्रि वासी हूँ। मुझे वीरपति भी कहते हैं। उस गिरि से इस ओर आखेट करता निकला हूँ। अपने सहयोगियों के साथ निकला था। वायु वेग से एक मृग इस ओर आया था। शायद वह अदृश्य ही हो गया है। उसी की खोज में मैं यहाँ तक पहुँच गया हूँ। इस कन्या को भी देखा है। इस पर मेरे हृदय में अनुराग उपजा है। क्या यह मुझे मिल सकती है?''

इस बात पर पद्मावती की सखियाँ नाराज हो गयीं। उनकी आँखें लाल हो गयीं। कटु शब्दों से वे बोली - ''आकाशराजा तुझे

देखेंगे तो कारागार में डाल देंगे। चुपचाप तुरंत यहाँ से भाग निकल।'' सखियों का क्रोध और उनकी बातें सुनकर घोडे पर सवार हो वह युवक वेंकटाद्रि की ओर शीघ्र ही निकल गया।

वह युवक और कोई नहीं - श्री वेंकटाद्रि वासी श्रीनिवास ही थे।

(वायुपुराण - 4 वाँ अध्याय)

14) श्रीनिवास के पद्मावती से परिणय का कारण

वेंकटाद्रि पहुँचकर श्रीनिवास ने अपने अनुचरों से विश्राम करने के लिए कहा। तदनन्तर गृह में पहुँचकर पद्मावती का स्मरण करते हुए पलंग पर लेट गये। इतने में श्रीनिवास की सेवा में रत वकुलादेवी अनेक प्रकार के व्यंजन बनाकर श्रीनिवास के कमरे में आयी। तब श्रीनिवास निमीलित नेत्रों से चिंताग्रस्त दिखे। वकुला माता ने तब श्रीनिवास को संबोधित कर कहा - ''हे देवदेव! उठिए! परमान्नादि व्यंजनों से युक्त भोजन तैयार है। क्या हुआ है? आर्त के समान पलंग पर लेटे क्यों हैं? सब की आर्ति मिटानेवाले आप की मनोविकलता का कारण क्या है? आखिर क्यों है? आखेट के लिए गये थे। आपने कहाँ क्या देखा? आप की स्थिति एक प्रेमी की स्थिति जैसी लग रही है। क्या कहीं आपने किसी देव कन्या या मानुष कन्या को अथवा नागकन्या को देखा? मैं तो आपकी सेवा रता हूँ। माता समान हूँ। क्यों मुझ से आप आपनी व्यथा छिपा रहे है? कारण बताइए।''

वकुलादेवी की बातें सुनी। पर श्रीनिवास चुप रहे। एक अंगड़ाई मात्र भी। वकुलमाला ने पुनः प्रश्न किया - ''आपके मन का हरण

कर अपनी ओर खींचनेवाली वह कन्या कौन है? अब मैं आप के लिए क्या कर सकती हूँ?'' इस पर श्रीनिवास ने बताना आरंभ किया –

''हे माते! त्रेता युग में मैंने रावण संहार के लिए राम का अवतार लिया था। उस समय वेदवती नामक कन्या ने लक्ष्मी (सीता) की सहायता की थी। सीता के रूप में लक्ष्मी जनक महाराज को भू यज्ञ में मिली थी। धनुष यज्ञोपरांत उनसे मेरा विवाह संपन्न हुआ। कैकेई को पिता से प्राप्त वरदानों के कारण वनवास के समय मैं पंचवटी समीप कुटी बनाकर सीता और भाई लक्ष्मण समेत रहता था। मारीच सुवर्ण हिरण के रूप में कुटी प्रान्त में आया था। वास्तव में वह रावण की सहायता के लिए ही आया था। उस माया हिरण को सीता ने चाहा। उसे पकडने मैं वन में गया। मारीच का वध तो हो गया, परन्तु मरते वक्त लक्ष्मण का नाम लेते मरा। 'हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण!' की पुकार सुनकर सीता के अनुरोध पर लक्ष्मण मेरे लिए आया। उस समय सीता आश्रम में अकेली रह गयी। माया भिक्षु के रूप में रावण सीता का अपहरण करने वहाँ पहुँचा। तब अग्निदेव ने रावण का अभिमत पहले ही समझ कर सीता को पाताल में स्वाहा देवी को सौंपा। सीता के स्थान पर सीता के रूप में वेदवती को पर्णशाला में रखा। वास्तव में वेदवती को ही सीता समझ कर रावण हर ले गया। रावण संहार के बाद अग्निहोत्र जानकी को मुझे सौंप कर वेदवती को साथ ले गये। सीता ने उस समय वेदवती को स्वीकारने का प्रस्ताव रखा था। अग्निदेव ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उस समय मैं ने वचन दिया था कि वेदवती भी श्री

लक्ष्मी के समान मेरे लिए प्रिय है। परम भगवान स्वभाविनी है। उन्हें मैं ने अट्ठाईसवें कलि युग में स्वीकार करने का भी वचन दिया था और वे भी इस प्रकार समस्त देवताओं और भक्त कोटि से पूजित होंगी। उस वचन के अनुरूप अब वेदवती ही आकाशराजा की तनया के रूप में बढ़ी हुई हैं। मुझसे और लक्ष्मी से वर पानेवाली वेदवती ही नारायणपुरम् में भूमिजा के रूप में आकाशराजा को प्राप्त हुई हैं। अपनी सखियों के साथ पुष्प चयन करती हुई उन्हें मैं ने आकाशराजा की पुष्पवाटिका में पाया है। उनके सौंदर्य का वर्णन करना मेरे लिए संभव नहीं है। उनकी प्राप्ति के बिना मेरा अब रहना संभव नहीं रह गया। आप वहाँ जाकर स्वयं देखिए। क्या वे मेरे लिए उपयुक्त हैं या नहीं।''

वकुलादेवी सारा वृत्तांत श्रीनिवास के मुँह से सुनकर प्रसन्न हुई। उनके मन को पहचाना। कार्य संपन्न करने का भार लेकर नारायणपुरम् की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में ही अगस्त्याश्रम था। वहाँ पहुँची तो वहाँ पद्मावती की सखियाँ उन्हें मिली।

(वराहपुराण - 5 वाँ अध्याय)

15) वकुलादेवी से पद्मावती की सखियों द्वारा पद्मावती का वृत्तांत कथन

वकुल माला देवी ने पद्मावती की सखियों को देखकर पूछा - ''तुम लोग कौन हैं? कहाँ से आयी हैं। किस कार्य वश इस आश्रम में हैं?''

सखियों ने उत्तर में कहा - ''हम आकाशराजा के महल में नियुक्त पद्मावती की सखियाँ हैं। हमारी राजकुमारी के साथ हम

उपवन में फूल चुनने गयी थीं। उस समय एक इन्द्रनीलमणि सम श्याम तनु से प्रकाशमान, सुवर्ण कुंडलों एवं हार - केयूरादि से विभूषित एक पीतांबरधारी युवक वहाँ दिखा। उसके स्मित वदन पर दिव्य कांति थी। पद्मावती ही उसे पहले देखकर आश्चर्य चकित हुई थी। हम से भी उसे और से देखने के लिए कहा। हम सब के देखते - देखते वह दिव्य पुरुष अन्तर्धान हो गया। हमारी राजकुमारी पद्मावती मूर्छित हो गयीं। हम सब ने मिलकर प्रयत्न पूर्वक उन्हें अंतः पुर पहुँचाया। उन्हें धैर्य दिया।

जब वे स्वस्थ हुई तब आकाशराजा ने दैवज्ञ को बुलाकर अपनी पुत्री का ग्रहचार फल देखने के लिए कहा। दैवज्ञ ने बताया था - ''हे राजन्! अब सब ग्रह अनुकूल हैं। आपकी पुत्री के लिए सब शुभ ही होगा। दिन फल कुछ अल्प मात्रा में प्रतिकूल लग रहा है। परन्तु शीघ्र ही सब ठीक होने की स्थितियाँ भी दिखाई दे रही हैं। एक उत्तम पुरुष ने आपकी पुत्री को देखा है। उन्हें देखकर ही आपकी पुत्री भी मूर्छित हुई हैं। कन्या उनके साथ विवाह बन्धन में जुडने वाली है। उनकी ओर से एक महिला आप के पास आनेवाली है। वे आकर आपके सामने हित प्रस्ताव रखेंगी। आपकी पुत्री के लिए भी हित कर और सुखदायक बात होगी। मैं एक बात कहता हूँ। इसका आचरण कीजिए। अगस्त्यलिंग का अभिषेक कराइए।'' इतना कहकर दैवज्ञ चले गये। तदुपरान्त आकाशराजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर अगस्त्याश्रम में जाकर वहाँ अपनी पुत्री के लिए शिव लिंगाभिषेक करने के लिए कहा है। अभिषेक के लिए आवश्यक सामग्री लेकर हम यहाँ पहुँची हैं। इस की अनुमति हमें राजा से मिली है। कार्य संपन्न करने हेतु हम यहाँ आयी हैं''

पद्मावती की सहेलियों ने सारा वृत्तांत कहकर वकुलमाला से प्रश्न किया - ''अब बताइए आप कौन हैं? आप यहाँ क्यों आयी हैं?'' इस पर वकुलादेवी ने समाधान के रूप में कहा - ''मैं वेंकटाद्रि से आ रही हूँ। मेरा नाम वकुलमालिका है। मैं महाराणी धरणी देवी से मिलने आयी हूँ। क्या आप लोग उनका दर्शन दिला सकती हैं?'' प्रत्युत्तर में पद्मावती की सखियों ने कहा अगर वे उनके साथ चलेंगी तो अवश्य धरणी देवी का दर्शन होगा।

आश्वासन पाकर वकुलादेवी धरणी देवी से मिलने नारायणपुरम् के लिए निकलीं।

16) पुलिंद स्त्री का धरणी देवी के प्रश्न का समाधान देना

जब वकुला देवी राजमहल में पहुँची तब राणी धरणी देवी एक पुलिंद स्त्री से बातें कर रही थीं। पुलिंद स्त्रियाँ वन्य जाति की होती हैं। वे भूत, भविष्य और वर्तमान को बताने में सिद्धहस्त होती हैं। धरणी देवी ने अपनी पुत्री पद्मावती के भविष्य की कुछ जानकारी पाना चाहा। पुलिंद स्त्री (तेलुगु में एरुकलसानि कहते हैं) ने उनसे कहा - ''हे महाराणी! मैं सत्य बोलती हूँ। एक युवक को देखकर आपकी पुत्री इस प्रकार कृश तनु हो गयी है। अनंग की पीड़ा से वह तप रही है। जिस पुरुष को आपकी पुत्री ने देखा है वे सामान्य नहीं हैं। वे देवाधिदेव हैं। वैकुण्ठ से पृथ्वी पर आये हैं। वेंकटाद्रि शिखर पर स्वामी पुष्करिणी तट के पास कामरूपी हो कर रह रहे हैं। वे अश्वारूढ़ होकर वन सीमाओं में और उपवनों में घूमते रहते हैं। उन्हों को आपकी पुत्री ने उपवन में देखा है। लक्ष्मी तुल्य सौंदर्यवती

आपकी पुत्री उन्हीं को मन से चाह रही है। उनको पाकर चिरकाल सुख वह प्राप्त करेगी। उनकी ओर से एक महिला आप से मिलने अवश्य आयेगी।''

पुलिंद स्त्री के वचनों से आनन्दित होकर राणी धरणी देवी ने उसे उचित रूप से संभावित कर भेजा। फिर अन्तःपुर में पुत्री के पास जाकर वात्सल्यभाव से पूछा - ''बेटी! तुम्हें क्या चाहिए। तुम्हारे लिए प्रिय क्या है?''

17) पद्मावती का धरणी देवी के सामने अपनी इच्छा प्रकट करना

अपनी माता के पूछने पर पद्मावती ने कहा - ''समस्त जीव कोटि के लिए नेत्रानंदकर, सत्पुरुषों के मनों के लिए प्रियंकर, ब्रह्मादिदेवताओं के चहैत, भक्त जन सुलभ विष्णु को मैं चाह रही हूँ। उन्हीं पर मेरा मन लगा हुआ है। अन्यों को मैं चाहती नहीं हूँ। श्याम मनोहर श्रीनिवास का ही स्मरण कर रही हूँ। उनका नाम स्मरण ही मेरे लिए जीवनकर है। उन्हीं के नाम के आश्रय में मैं जीवन बिता रही हूँ। उनसे योग का अवसर प्राप्त कराना ही अब आप लोगों का लक्ष्य होना चाहिए माँ! तब धरणी देवी ने सोचा का विष्णु इन पर क्या प्रेम रखनेवाले होंगे?

उसी समय अगस्त्य लिंग की अभिषेकोपासना के लिए अगस्त्याश्रम में गयी हुई पद्मावती की सखियाँ ब्राह्मणों के साथ वकुलादेवी को भी साथ लेकर महल में पहुँचीं। विप्रों को दक्षिणादि से सम्मानित कर राणी ने उनसे पद्मावती को आशीर्वाद दिलाया। सभी विप्र वहाँ से अपने घर के लिए निकले।

(वराहपुराण 6 टा अध्याय)

18) वकुलादेवी द्वारा धरणी देवी को श्रीनिवास का वृत्तांत निवेदन

विप्रों के चले जाने के बाद धरणी देवी ने वकुलादेवी को देखकर पद्मावती की सखियों से पूछा - ''ये देवी कौन हैं? आप लोगों से ये कहाँ मिलीं? आप के साथ ये यहाँ क्यों आयी हैं?''

सखियों ने राणी से कहा - ''महाराणी जी! ये आपसे विशेष कार्य थीं। हमसे इन्हों ने कहा था कि वे आप से मिलने की कामना लेकर आयी हैं। राज महल में आपके दर्शन कराने के लिए ही इन्होंने हम से कहा था। हमने उनसे कहा कि हम राणिवास की दासियाँ हैं। हमारे साथ आयेगी तो आपका दर्शन होगा। बस वे हमारे साथ यहाँ पहुँची हैं। असल में आपके आने से संबन्धित कार्य का हमें किंचित भी पता नहीं है। आप ही इन से पूछ लीजिएगा।''

राणी धरणी देवी ने वकुलादेवी की ओर मुड़ कर पूछा - ''माँ, बताइए आप कहाँ से आ रही हैं? मुझ से आप को क्या चाहिए? किस कार्य वश आप यहाँ आयी हैं? हम वचन देती हैं कि आप की इच्छा अवश्य पूरी करेंगी। निस्संकोच बताइएगा।''

राणी धरणी देवी से आश्वासन पाकर वकुलामाता ने कहा - ''हे महाराणी जी! मेरा नाम वकुलमालिका है। मैं वेंकटाद्रि से आ रही हूँ। हमारे स्वामी श्रीनिवास हैं। वेंकटाद्रि पर उनका निवास है। इधर एक दिन हमारे श्रीनिवास अश्व पर आरूढ़ होकर आखेट के लिए इधर पधारे थे। रास्ते में एक उपवन में पुष्पों का चयन करनेवाली कुछ कन्याओं को देखा। उनके बीच एक अति मनोहर रूपवाली, सुवर्ण कान्तियों से शोभित, लक्ष्मी समान सौंदर्य से युक्त

एक कन्या को उन्होंने देखा। उनके पूछने पर उस युवती की सखियों ने बताया था कि वे आकाशराजा की पुत्री हैं। श्रीनिवासने तुरंत वेंकटाद्रि लौटकर मुझसे प्रार्थना पूर्वक कहा कि मैं आपके पास जाऊँ और कन्या का विवाह उनसे संपन्न कराने की बात कहूँ। उनकी आशा और आज्ञा लेकर आप के पास आयी हूँ। आप महाराज से और आप की पुत्री से पूछ कर ही इस विष्य का निर्णय लीजिएगा। मुझे बताइगा।''

19) श्रीनिवास का पद्मावती के साथ विवाह का निर्णय

राणी धरणी देवी ने आकाशराजा और पद्मावती दोनों के सामने वकुलादेवी का प्रस्ताव रखा। राजा अति प्रसन्न हुए। उन्होंने राणी से कहा - ''महाराणी! हमारी कन्या अयोनिजा है। दिव्या है। इनका वरण करने योग्य वेंकटाद्रिवासी देवदेव ही हैं। इतने दिनों के बाद मेरे मनोरथ को पूर्णता संप्राप्त हो रही है।'' इतना कहकर आकाशराजा ने बृहस्पति को सादर बुलावा भेजा। उनके आने के बाद निवेदन किया - ''हे गुरुवर! हमारी कन्या पद्मावती का श्रीनिवास के साथ विवाह कराना हमरी कामना है। हमारा निश्चय भी यही रहा है। आप को सुमुहूर्त का निश्चय करना है। कन्या का जन्म नक्षत्र मृगशिरा है और श्रीनिवास का जन्म नक्षत्र श्रवणा है।''

इस पर बृहस्पति ने कहा कि ''दोनों के लिए उत्तर - फल्गुणी नक्षत्र शुभकर है। उसी शुभ नक्षत्र में विवाहोत्सव संपन्न करने के लिए प्रयत्न आरंभ कीजिएगा।'' तब आकाशराजा ने वकुलामाता को सगौरव बुलाया और निर्णय इस प्रकार दिया - ''हे माता! श्रीनिवास के साथ पद्मावती का विवाह निश्चय है। वैशाखमास में उत्तर -

फल्गुणी नक्षत्र के दिन पर विवाह का मुहूर्त देवगुरु बृहस्पति ने निश्चित किया है। अपनी ओर से भी विवाह महोत्सव के प्रयत्नों के साथ साथ आप आइएगा।'' वकुलामाता के साथ अपने सन्निहित शुक को दूत के रूप में भेजा। इन्द्रदि देवताओं को विवाह महोत्सव में आमंत्रित करने के लिए वसुदेव को आदेश दिया गया। समस्त नगरी के अलंकरण का दायित्व विश्वकर्मा को दिया गया।

वकुलामाता शुक के साथ वेंकटाद्रि पहुँचीं। वहाँ श्री देवी के साथ रत्नपीठ पर विराजमान श्रीनिवास से कहा - हे श्रीनिवास! मेरा प्रयत्न सफल हुआ है। शुभ समाचार शुक आप को देंगे।''

शुक ने श्रीनिवास को नमस्कार कर बताया - ''हे प्रभु! भूमि सुता पद्मावती का निवेदन है कि 'मैं हमेशा आपका नाम स्मरण करती हूँ। आपके रूप को मनोनेत्रों से ओझल होने नहीं देती हूँ। आपके सभी चिह्नों को मैं धारण करती हूँ। आप के भक्तों को दान देती रहती हूँ। यह सब मेरे पिताजी की अनुमति के अनुरूप ही किया जाता है। मुझ पर कृपा भाव रख कर मुझे स्वीकार कर अनुग्रहीता कीजिएगा'। अब सब कुछ आपके ही हाथ में है।''

शुक के मुँह से पद्मावती की बातें सुनकर श्रीहरि प्रसन्न हुए और प्रत्युत्तर में आगे कहा - ''हे शुक जी! पद्मावती जी को स्वीकार करना मेरे लिए अत्यंत संतोषदायक है। मैं देवता तथा अन्य परिवार के साथ वहाँ समय पर पहुँचकर उन्हें स्वीकार करूँगा।'' श्रीनिवास ने इन वचनों के साथ अपनी एक पुष्पमालिका पद्मावती के लिए भेजी। पद्मावती उसे शिरसाग्रहण कर अलंकृता हो देवदेव के आगमन की प्रतीक्षा में रहने लगी।

आकाशराजा ने चन्द्रमा को बुलाकर विष्णु के लिए प्रीतिकर क्षीरान्न तथा अन्य मिष्टान्न पदार्थों की तैयारी का दायित्व सौंपा। इसी प्रकार परिणयोत्सव के लिए अन्य आवश्यक कार्य संपन्न करने के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को नियुक्त करके शुभ दिन और श्रीनिवास के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

(वराहपुराण - 7 वाँ अध्याय)

20) श्रीनिवास का तर के रूप में अलंकरण से युक्त हो देवता समूह के साथ वियद्राजपुर के लिए प्रस्थान

देवाधिदेव श्रीनिवास ने लक्ष्मी देवी को बुलाकर विवाह नेपथ्य का विवरण दिया। इस बात को अपनी सभी सखियों को भी बताने के लिए भी कहा। फिर सुवर्ण घटों से लाये गये वियद् गंगा जलों से श्रीनिवास को अभ्यंगन स्नान कराया गया। सुगंध द्रव्य और धूपों से केश सुखाये गये। शरीर पर सुगंधित द्रव्य लेपन किया गया। पीतांबर वस्त्र धारण कराया गया। मुकुट आदि समस्त आभरणों से श्रीनिवास अलंकृत हुए। इन्द्राणी ने छत्र धारण किया। गौरी और सरस्वती चामरों से हवा देने लगीं। जय - विजय आगे - आगे चले। लक्ष्मी समेत गरुड़ पर विराजमान होकर आकाशराजा की नगरी के लिए श्रीनिवास निकले, वर श्रीनिवास की ओर से ब्रह्मा, शिव, इंन्द्र, वरुण, यम, यक्ष, किन्नर आदि बरात में चले। सनकादि योगियों और वशिष्ठादि ऋषि - मुनि समूह भी बरात में था। गांधर्व गीत गाते थे। देव - दुदुभियाँ बज रही थीं। दिव्य नाद समस्त दिशाओं को सम्मोहित कर रहा था। विष्णु के सेनापति विष्वक्सेन बरात का नेतृत्व कर रहे थे। वकुलामाता अपनी सहचरियों के साथ

श्रीनिवास का कल्याण कार्य निभाने चली। अत्यंत वैभव पूर्ण रूप से अलंकृत आकाशराज पुरी में समय पर बरात का प्रवेश हुआ।

21) दिव्य विवाहमहोत्सव

श्रीनिवास के आगमन का समाचार पाकर आकाशराजाने पद्मावती को ऐरावत पर आरूढ़ कराकर पुर के दक्षिणोपरांत गोपुर द्वार पर हाथी को ठहराया था। श्रीनिवास अपने वैभव के साथ पहुँचे तो वर और वधू को पास ठहराया गया। श्रीनिवास ने अपने कंठ में विराजित वनमाला को पद्मावती के कंठ में डाला। पद्मावती देवी ने भी अपने कंठ में विभासित मल्लिका माला को श्रीनिवास के कंठ में शोभित कराया। तीन बार मालिका विनिमय के पश्चात वहाँ की वेदिका पर वर - वधू को बिठाया गया। उस अनुपम दृश्य को देखकर सब तन्मय हो गये। तत्पश्चात् विवाह मंण्टप में वर और वधू पहुँचे।

विवाह वेदिका सुमन्नत रूप में अलंकृत रूप में अलंकृत थी। संपन्न करने के लिए ब्रह्मा जी पहले ही आये थे। अंकुरार्पण आदि विधियाँ पूरी की गयी। सुमुहूर्त पर मांगल्य धारण प्रक्रिया भव्य रूप में चली। मंगल सूत्र धारण के उपरान्त लाज होमम् आदि वैभव के साथ संपन्न हुए। समस्त वैवाहिक विधियों से परिणयोत्सव वैभव चतुर्थ दिन पर्यन्त रहा। चौथे दिन उत्सव कार्यक्रम समाप्त हुए।

विवाहोपरान्त आकाशराजा की अनुमति से ब्रह्मा ने पद्मावती समेत श्रीनिवास को गरुड़ पर आसीन कराया। दिव्य - दुन्दुभि नाद के बीच श्रीनिवास वृषभाद्रि पहुँचे। आकाशराजा ने अनेक सुवर्ण पात्रों के साथ एक सहस्त्र क्षीर घट (दूध के घडे), दिव्य फल, सुवर्ण

आभूषण, मुक्ताहार और सहस्त्र दास - दासी समूह को भी भेजा। सहस्त्राधिक गो - हय भी भेट किये गये। अतःपुर परिचारिकाएँ भी साथ थी।

इस संरंभ को देखकर श्रीनिवास ने आनंद से प्रफुल्लित होकर ससुर से कहा - ''आप को मैं वर प्रदान करना चाहता हूँ। आप जो चाहते हैं माँगिएगा।'' इस पर आकाशराजा अपरिमित आनन्द से साधुवचनों में कहा - ''मुझे आपकी अनवरत सेवा का भाग्य प्रदान कीजिए। मेरा मन हमेशा आप के पद कमलों में अनुरक्त रहे और आप की ओर अटूट भक्ति मुझ में रहे। बस यही मेरी एक मात्र इच्छा है।'' भगवान श्रीनिवास ने ''तथास्तु'' कहा। विवाह महोत्सव में भाग लेनेवाले समस्त देवता और मुनि गण ने आकाशराजा और श्रीनिवास से अनुमति लेकर अपने अपने स्थानों के लिए प्रस्थान किया। श्रीनिवास वेंकटाद्रि पर लक्ष्मी और पद्मावती सहित विहरण करने लगे। स्वामी पुष्करिणी तट पर विराजमान दिव्य मंदिर में पूजा - अर्चनाएँ पाते हुए विराजित हुए।

(वराहपुराण - 8 वाँ अध्याय)

22) कलियुग में श्रीनिवास के कतिपय भक्तों के वृत्तांत

वेंकटाद्रि पर वसु नामक एक निषाद रहता था। श्यामाक वन प्रान्त उसके अधीन था। वह पुरुषोत्तम पर अशेष भक्ति रखनेवला था। वह रोज श्यामाक वन में मिलनेवाले तंडुलों को निवेदन योग्य बनाकर शहद से मिलाकर भक्ति से भगवान को नैवेद्य के रूप में देता था। चित्रावती उसकी धर्मपत्नी थी। उसको वीर नामक एक पुत्र हुआ।

एक दिन अपने पुत्र को श्यामाक धान्य देखते रहने के लिए नियुक्त कर पत्नी समेत मधुचयनार्थ वसुवन में गया। पिता के लौटने से पहले ही वीर ने श्यामाक धान्य को पकाकर भगवान को निवेदिन किया और उसे प्रसाद के रूप में स्वीकारा भी। वसु ने वन से शहद लाकर देखा। वीर खा चुका था। वसु ने वीर द्वारा किये गये अपराध से क्रोधित होकर उसे मारने के लिए तलवार निकाला। तुरन्त श्री महाविष्णु एक वृक्ष के पीछे से प्रकट हुए। वसु के तलवार को पकड़ा पीछे से ही। जब वसु ने मुड़ कर देखा तो उसने पाया वृक्ष के पास शंख - चक्र - गदाधारी विष्णु थे। उनका दर्शन किया। खड्ग को छोड श्रीनिवास के चरणों पर गिरा। उनसे पूछा - ''हे भगवान! यह क्या है?'' तब श्रीनिवास ने आज्ञा दी - ''हे भक्त! सुन! तुम्हारा पुत्र भी मेरा विशेष भक्त है। तुम से ज्यादा वह मेरे लिए प्रिय है। मैं सर्वत्र रहता हूँ। उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। इसी लिए मैं प्रत्यक्ष हुआ हूँ। वह मानता है कि कि मैं सर्व व्यापी हूँ। तुम समझते हो कि मैं पुष्करिणी तीर्थ वासी मात्र हूँ।'' इतना कह कर स्वामी अन्तर्धान हो गये।

(2)

पाण्ड्य देश में रंगदास नामक एक हरि भक्त रहता था। उसमें बचपन से ही श्रीनिवास के प्रति भक्ति की भावना पनप रही थी। विष्णु भक्ति समन्वित वह एक बार नारायणपुरम् आया। वहाँ पर उसे ज्ञात हुआ कि पास ही वेंकटाद्रि पर स्वयंभू श्रीनिवास विराजमान हैं। उनकी सेवा की कामना उस में जगी। सुवर्णमुखरी नदी को पार कर पद्मसरोवर में पुण्य स्नान किया। उस की तटी पर ही रहनेवाले रामकृष्ण की सेवा की। फिर शेषाद्रि पहुँचा। वहाँ के पापनाशनी

चक्रतीर्थ में स्नान कर पवित्र होकर वेंकटाद्रि पहुँचा। फिर वहाँ की स्वामी पुष्करिणी में सभक्ति स्नान के बाद उस के तट पर वृक्ष के मूल में पूजित देवदेव को नमस्कार अर्पित किये। तब श्रीदेवी और भूदेवी संयुत, शंख - चक्र - गदा - शार्ङ्गधारी श्रीनिवास गरुड़ पर विराजमान होकर उस भक्त के सामने प्रत्यक्ष हुए। रंगदास आश्चर्च चकित हो गया। विष्णु भगवान को साष्टांग दण्ड प्रणाम किया। इस के बाद रंगदास ने वहीं रह कर स्वामी के लिए एक सुंदर उपवन तैयार करना चाहा। तदर्थ परिसर वन प्रान्त को साफ किया। एक शिला प्राकार का भी निर्माण किया। उस में पुष्पवाटिका बनायी। पौधों को रोपित किया। उस वाटिका से स्वयं फूलों का चयन कर देवदेव को नित्य प्रति अर्पित करने लगा।

एक दिन एक गंधर्व राजा अपनी स्त्रियों के साथ वेंकटाद्रि पर आया। वह पुष्प वाटिका के सरोवर में जलक्रीडाएँ कर रहा था। रमणियों के साथ जलक्रीडारत गंधर्व को देखकर रंगदास आकर्षण में आ गया। पुष्पमालाएँ हाथ में रखकर भी भगवान को अर्पित करना भूल गया। जल क्रीडा के उपरांत गंधर्वराजा अपनी स्त्रियों के साथ विमान पर अधिरोहित होकर आकाश मार्ग से चला गया। तब जाकर रंगदास होश में आया। अपने को संभाल कर, स्नान कर पुष्पमालाएँ समर्पित करने भगवान के विमानम् में पहुँचा। पूजा का समय बीत चुका था। कैंकर्य में देरी हो गयी थी। पुजारी ने रंगदास से प्रश्न किया - ''हे भक्त! आज क्यों इतनी देरी हो गयी है?'' रंगदास लज्जा से कुछ कह नहीं सका। तब भगवान प्रत्यक्ष हो कर बोले - ''हे रंगदास! क्यों लज्जित हो रहे हो? मैं ने ही तुम्हारी परीक्षा लेने की इच्छा से तुम्हें मोहित किया था। अभी परिपक्व

होकर तुम ने अपने मन पर विजय नहीं पायी है। तुम भी उस गंधर्व राजा के समान पृथ्वी पर राजा बनोगे। समस्त भोग अनुभव करने के बाद ही पुनः मेरा भक्त बन कर मेरे लिए विशिष्ट प्राकार और विमानम् का निर्माण कराओगे। तभी मैं तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा। तुम्हारे इस पार्थिव शरीर के पतन होने तक इसी प्रकार मेरी सेवा करते रहो। सही समय पर सही रीति से तुम्हें मुक्ति मिलेगी।'' - इतना कहकर श्रीनिवास अन्तर्धान हो गये। रंगदास ने वही एक शताब्दी पर्यन्त भगवान की सेवा करते हुए अन्त में शरीर छोड़ा।

कालांतर में सुवीर नामक राजा को उनकी धर्मपत्नी नंदिनी देवी से तोंडमान नामक पुत्र का जन्म हुआ। पाँचवें वर्ष की आयु में ही उस के मन में विष्णु भक्ति का उदय हुआ। वह शूर, वीर, सुशील और गुणवान था। युक्त वयस्क हुआ तो पाण्ड्य राजा की पुत्री पद्मावती देवी से उसका विवाह संपन्न हुआ। वह नारायणपुरम् में देवराज इन्द्र के समान ''वैभवों को भोगता हुआ राज्य करने लगा।

एक दिन तोंडमान राजा अपने पिता की अनुमति से आखेर मिस वेंकटाद्रि के समीपवर्ती कानन में गया। वहाँ परिवार सहित पैदल जा रहा था। इतने में एक मस्त हाथी उसके सामने आया। उसे पकडने के उद्देश्य से तोंडमान ने उसका पीछा किया। चलते - चलते सुवर्णमुखी नदी को पारकर शुक महर्षि के आश्रम तक पहुँच गया। महर्षि को नमस्कार कर वहाँ से गहन कानन की ओर बढ कर गया। रास्ते में रेणुका देवी को देखा। वे तपस्या रत थीं। वे त्रिदशों की आराध्या थीं। उनको भी तोंडमान ने श्रद्धा से नमस्कार किया। फिर पश्चिम दिशा की ओर जाने लगा तो रास्ते में उसको पंचवर्ण शुक दिखा। उस सुंदर तोते को पकडने की इच्छा उसके मन में जगी।

तोते का पीछा करने लगा। वह तोता ''श्रीनिवास श्रीनिवास'' कहता वेंकटाद्रि की ओर उड चला। तोंडमान भी उसका पीछा करता हुआ वेंकटाद्रि पहुँचा। परन्तु वह पंचरंगी शुक गायब। वेंकटाद्रि पर राजा से श्यामाक मिले। उससे राजा ने पूछा - ''क्या आपने यहाँ कहीं एक पंचरंगी शुक को देखा है?'' वनवासी श्यामाक ने उत्तर में कहा - ''वह पंचवर्ण तोता श्रीनिवास का है। वह उन्हें अत्यंत प्रिय है। हमेशा उनके पार्श्व में ही रहता है। श्रीदेवी और भूदेवी उसे पाल रही हैं। उसे पकड़ना किसी के वश की बात नहीं है। दिन भर वन प्रान्त में स्वेच्छा से उड़ता रहता है। रातें श्रीनिवास की सन्निधि में बिताता है। मैं श्रीनिवास की आराधना के लिए जा रहा हूँ। मेरे लौटने तक मेरे पुत्र के साथ आप यहाँ ठहर सकते हैं।'' बात सुनकर तोंडमान ने कहा - ''मैं भी आप के साथ आऊँगा। मुझे भी श्रीनिवास के दर्शन का भाग्य दिलाइएगा।'' राजा तोंडमान के स्वर में प्रार्थना थी।

वनचारी श्यामाक ने स्वीकार किया। मधुमिश्रित श्यामाकान्न लेकर राजा तोंडमान को साथ लेकर स्वामी पुष्करिणी के पास पहुँचा। उस के पास वृक्ष मूल में देव देव का दर्शन कराया। राजा तोंडमान में एक साथ विस्मय और आनंद का संचार हुआ। प्रफुल्ल मन से निषाद द्वारा भगवान को अर्पित मधु मिश्रित श्यामकान्न को प्रसाद के रूप में ग्रहण किया। निषाध श्यामाक के घर में एक रात रहा। फिर स्वपुर लौटा।

चैत्र शुद्ध नवमी के दिन रेणुका देवी की पूजा की। उन्हें विविध प्रकार के नैवेद्यों के साथ सुराघट शतक अर्पित किये। देवी संतुष्ट होकर राजा तोंडमान के सामने प्रत्यक्ष हुई। उसे एक वर प्रदान किया - ''हे राजा! सुन! तुम्हारा राज्य निष्कंटक रहेगा। तुम्हारे

नाम से यहाँ एक राजधानी विलसित होगी। मेरे पास ही तुम चिरकाल राज करोगे। देव देव का प्रसाद भी तुम्हें प्राप्त होगा।'' - इतना कहकर वे अदृश्य हो गयी।

23) पद्मसरोवर का माहात्म्य

रेणुका देवी की कृपा लब्धि से राजा तोंडमान शुक महर्षि के आश्रम में गये। उन से पद्मसरोवर का माहात्म्य बताने की प्रार्थना की। तब शुक जी ने इस प्रकार कहा - ''हे राजन्! श्रद्धा से सुनिए! पूर्व समय में दुर्वास मुनि से शाप पाकर विष्णु मूर्ति के साथ स्वर्ग छोडकर लक्ष्मी जी पद्मसरोवर में अयुत दिव्य वर्षों तक तपस्या में लीन हो गयी थीं। इंद्रादि देवता समूह भी वैकुण्ठ में विष्णु और लक्ष्मी देवी को न पाकर ढूँढने लगे। ढूँढ - ढूँढकर अन्त में पद्मसरोवर में एक सुवर्ण कमल में पुण्डरीकाक्ष सहित श्री को देखा। उन्हें महत् आनंद हुआ। प्रणमित होकर लोक माता की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हो कर रमा ने कहा - ''आप सब अपने अपने शत्रुओं का संहार कर अपने अपने स्वस्थान पहुँच जाइएगा। इसी प्रकार अपने स्वस्थानों से बिछुडे मनुष्य भी मेरी स्तुति के फल स्वरूप अपने अपने स्थानों को पुनः प्राप्त करेंगे। मुझे जो। बिल्व पत्रों से अर्चित करेंगे, वे चतुर्विध फल करेंगे। उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुलभ प्राप्य होंगे। मेरी स्तुति करते हुए जो भक्त इस पद्मसरोवर में पवित्र स्नान करेंगे, उन्हें ऐश्वर्य, दीर्घायु, विद्या, सुसंतान की प्राप्ति आदि के साथ अन्त में मोक्ष अवश्य मिलेगा।'' इस प्रकार वर प्रदान कर लक्ष्मी विष्णु के साथ वैकुण्ठ पहुँचीं।

(वराहपुराण - 9 वाँ अध्याय)

इस प्रशस्त गाथा को सुनाकर श्री शुक महर्षि ने राजा तोंडमान से कहा - ''यह पद्मसरोवर सर्व पापहरण करनेवाला है। कीर्तन से, स्मरण से, स्तवन से यह पृथ्वी पर लक्ष्मीप्रद है। इस सरोवर में पवित्र स्नान कर तुम अपने जनक के पास जाओ।'' तोंडमान ने ऐसा ही किया। जैसे ही वह महल में पहुँचा वैसे ही उसके पिताजी ने उसे युवराज के रूप में अभिषिक्त किया। उस की वीरता, सामर्थ्य, सुशीलता आदि देखकर कुछ ही समय के बाद तोंडमान को राज्याभिषिक्त किया। तदनन्तर वे पत्नी के साथ वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर वन में चले गये।

राजतिलक के बाद राजा तोंडमान जनरंजक रूप में राज्य का पालन करने लगे। उधर निषाद वसु के वन में देव देव वराह रूप में प्रति दिन पक्व श्यामक अन्न प्रसाद ग्रहण करते रहे। रोज वराह के पद चिह्न भी दिखाई देते रहे। परन्तु वराह का दर्शन नहीं होता था। वराह को प्रत्यक्षतः देखने की अभिलाषा से एक दिन धनुर्धारी होकर जागरुकता से निरीक्षण करते रहे। श्यामक वन प्रान्त में विचरण करनेवाला श्वेत वराह उन्हें दिखाई पड़ा। तब वसु ने सिंह नाद किया। उस नाद को सुनकर वराह वन में निर्गत हो गया। निषाद रात भर दौडता रहा। भोर के समय वराह एक वलमीक (बांबी) में प्रवेश कर गया। निषाद ने क्रोध में आकर उस वल्मीक को खोदना आरंभ किया। धरा वराह का दर्शन तो उसे मिला, परन्तु वह स्वयं मूर्छित होकर धरा पर गिरा। वसु के पुत्र ने वराह मूर्ति का स्तोत्र किया। श्रीहरि प्रसन्न होकर उसके पिता पर आवेशित हुए। वसु पुत्रसो भगवान ने ही। उसके पिता के मुँह से कहा - ''मैं वराह

के रूप में यहाँ वास कर रहा हूँ। इसी रूप में मैं यहाँ विचरण भी करता हूँ। तुम अपने राजा से कह कर यहाँ मेरी प्रतिष्ठा कराओ। तुम भी पूजा करो। वलमीक को कृष्ण गोक्षीर से (श्यामा गाय के दूध से) धोयेंगे तो शिला रूप में यहीं उद्भवित हो जाऊँगा। मेरी प्रतिष्ठा करवाकर राजा तोंडमान मुझे अनेक भोगों से आराधित करें।'' देव देव निषाद के शरीर से मुक्त हो गये। निषाद स्वस्थ है जगा। स्वस्थ पिता से पुत्र ने सारा वृत्तांत कहा। निषाद वसु अत्यंत आश्चर्य चकित हुआ। इस वृत्तांत को वह तोंडमान राजा के पास जाकर निवेदित करने गया।

राजा तोंडमान वसु को देखते ही प्रसन्न हुए। उसका आदर के साथ सत्कार किया। अचानक आगमन का कारण पूछा। निषाद ने श्यामाक वन में अपनी आँखों से देखा वराह वृत्तांत बताया। देव देव की आज्ञा उनको सुनाई। सुनकर राजा तोंडमान पहले तो आश्चर्य चकित हुए। फिर संभाल कर प्रेम और भक्ति से सिंचित मन से वेंकटाद्रि जाने का निश्चय भी लिया।

अपने मंत्रियों को यात्रा की तैयारियों के लिए आदेश दिया। इतना ही नहीं गोपालकों को बुलाकर श्यामा गायों को भी वेंकटाद्रि ले जाने के लिए कहा। दूसरे ही दिन वेंकटाचल की यात्रा का निश्चय कर वे अन्तःपुर में गये। सारा समाचार महल की देवियों को देकर स्वयं शयन मंदिर में चले गये। गरही नींद में थे। उनको श्रीनिवास का स्वप्न दर्शन हुआ। सपने में वेंकटपति ने एक बिल मार्ग को दिखाया। पुर से बिल मार्ग तक मार्ग में पल्लवों का सृजन भी किया। सुबह जगते ही राजा ने अपने स्वप्न वृत्तांत को मंत्रियों और

सभा सदों को बताया। अपने द्वार पर भी एक पल्लव को उन्होंने पाया।

शुभ मुहूर्त में राजा तोंडमान अश्वारूढ़ होकर निकले। पल्लवों को देखते हुए उनके साथ बिल मार्ग तक पहुँचे। उस बिल को देखते ही वे आश्चर्य चकित हुए। उस बिलको अन्तःपुर के अंतर्गत रखने की इच्छा से राजा ने एक प्राकार के निर्माण का निश्चय भी किया। उनकी इच्छा थी कि वह प्राकार उनकी नगरी का भी प्राकार बने। देव देव की आज्ञा के अनुसार भगवान को क्षीर घटों से स्नपित कराया। विमान निर्माण का आरंभ किया। उस समय श्रीनिवास ने राजा तोंडमान को आज्ञा दी - ''हे भक्त प्रवर राजन! इस तिंत्रिणी वृक्ष (इमली का पेड) और चंपक वृक्ष दोनों को छोडकर अन्यों का छेदन करो। इन दोनों वृक्षों की अवश्य रक्षा करना। यह तिंत्रिणी वृक्ष मेरा स्थान है और चंपक वृक्ष लक्ष्मी का है। वे दोनों भक्तों के लिए भी समादरणीय हैं। मेरे लिए तुम द्वार और गोपुरों से युक्त प्राकार का निर्माण कराओ। विमानम् का निर्माण तुम्हारे वंशज नारायण आगे चलकर करायेगा। वह भी मेरा भक्त ही होगा। वही विमानम् का निर्माण कर उसे सुवर्णमय बनायेगा।'' भगवान के आदेशानुसार तोंडमान ने प्राकार का निर्माण कराया। देव देव की प्रतिष्ठा की। प्रति दिन बिल मार्ग से वहाँ पहुँचकर श्रीनिवास की अर्चनादि स्वयं निवेदित करते रहे। धर्म नियमानुसार राज्य का शासन भी करते रहे।

उनके ही समय में वीर शर्मा नामक एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण रहता था। अपनी धर्म पत्नी के साथ गंगा स्नान के लिए निकला।

पत्नी गर्भवती थी। उन दिनों काशी की यात्रा पैदल की ही यात्रा होती थी। वह चल नहीं पा रही थी। तब वीरशर्मा के मन में तोंडमान राजा के दर्शन की अभिलाषा जगी। राजद्वार पर पहुँचा। द्वारपालक ने ब्राह्मण का समाचार राजा को दिया। राजा तोंडमान ने विप्र को बुलाकर समुचित सत्कार किया। आगमन कार्य के संबन्ध में पूछने पर ब्राह्मण ने कहा - ''हे राजन्! मेरा नाम वीर शर्मा है। मैं सामवेदी ब्राह्मण हूँ। पत्नी के साथ गंगा स्नान के लिए काशी की यात्रा पर निकला हूँ। मेरी पत्नी गर्भवती है। समाचार मुझे रास्ते में ही मिला है। वह यात्रा करने की स्थिति में नहीं है। उसे आप के संरक्षण में छोडकर जाना चाहता हूँ ताकि मेरा गंगास्नान व्रत निर्विघ्न चले। इनके भोजन आदि का इंतजाम कर मेरे वापस आने तक आप इसे अपने पास आश्रय दीजिएगा।'' राजा ने ब्राह्मण से कहा कि ऐसा ही होगा। छः महीने तक के लिए आवश्यक खाद्य सामग्री का इंतजाम करने की आज्ञा दे कर राजा ने ब्राह्मणी को अपने अन्तःपुर के पास ही रहने की व्यवस्था की। ब्राह्मण पत्नी को राजा की रक्षा में छोडकर गंगा स्नानार्थ यात्रा पर निकल गया। काशी, प्रयाग आदि पुण्य क्षेत्रों में पवित्र स्नान कर गया क्षेत्र में पितृकार्य संपन्न करने की इच्छा से वहाँ भी पहुँचा। इस के बाद अयोध्या, बदरीनाथ, आदि क्षेत्रों की यात्रा भी ब्राह्मण ने की। इस तरह उस ब्राह्मण ने लगभग दे वर्ष बिताया। फिर स्वदेश की ओर लौटा।

चैत्र शुद्ध एकादशी के दिन पर ब्राह्मण राजा के पास पहुँचा। साथ पवित्र गंगा जल भी लाया था। राजा को दिया। अपनी पत्नी का कुशल पूछा। दो वर्ष बीत जाने के कारण राजा ब्राह्मणी की बात भूल ही गये थे। ब्राह्मण को देखकर ही ब्राह्मणी की याद आयी। उसके

संबन्ध में पूछताछ की। छः माह के बाद उस ब्राह्मणी के लिए रवाने - पीने की व्यवस्था ठप हो गयी थी। फलतः वह मर चुकी थी। राजा ने ब्राह्मण से सत्य न कह कर अन्त:पुर के बिल मार्ग से वराह मूर्ति के पास जाकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् श्रीनिवास के दर्शन के लिए मंदिर में पहुँचे। श्रीनिवास ने राजा से पूछा - ''राजा! अब तुम्हारे आगमन का कारण क्या है?'' राजा भयभीत था। धीरे धीरे ब्राह्मणी का वृत्तांत देव देव से निवेदन किया। भगवान श्रीनिवास भक्तवशंकर हैं। भक्त से उन्होंने कहा - ''हे राजा! डरो मत! उस ब्राह्मणी के पार्थिव शरीर के जो भी अंश मिले उन्हें पालकी में रखकर अपने अन्त:पुर जनों के साथ मेरे आलय की पूर्व दिशा में विराजमान अस्थि सरोवर में द्वादशी के दिन स्नान करवाना। वह अवश्य पुनर्जीवित होंगी। अपने पति से मिलेगी। शीघ्र जाओ और कार्य संपन्न करो।''

श्रीनिवास की आज्ञा के अनुसार राजा ने किया। ब्राह्मणी सजीव हुई। ब्राह्मण को सौंपी गयी। राजा ने हरि की पूजा की और ब्राह्मण को धनादि दे कर संतोषित किया। ब्राह्मण को जब सत्य का पता चला तो श्रीनिवास के प्रभाव पर अश्चर्य चकित हुआ। देवदेव की पूजाएँ की। राजा को आशीर्वाद दे कर स्वदेश के लिए प्रस्थान किया। विप्र के जाने के बाद श्रीनिवास ने राजा से कहा - ''हे राजा! हर दिन नैवेद्य के बाद मध्याह्न समय में आकर सुवर्ण कमलों से मेरी पूजा करो। धर्मानुसार राज्य पर शासन करो। तुम्हारी अभीष्ट की सिद्धि होगी। असमय और कुसमय में मेरे पास दौडकर मत आना।'' राजा ने भगवान का आदेश माना। प्रति दिन सुवर्ण कमलों से उनकी अर्चना - पूजा करते रहे।

एक दिन राजा ने श्रीनिवास की अर्चना में उनके द्वारा अर्पित तुलसी दलों पर मिट्टी के निशान देखे। रोज तुलसी दलों और अन्य पुष्पों को निर्मल बनाकर घर में श्रीनिवास की पूजा करते थे। उनके मन में शंका पैदा हुई कि मृण्मय तुलसी दलों से किसने पूजा की है। तब श्रीनिवास ने राजा से कहा - ''हे राजन्! कुर्व नामक तुम्हारे राज्य के एक गाँव में कुलाल जाति के भीम नामक मेरा एक भक्त है। वह रोज अपनी झोंपडी में मेरी पूजा - अर्चना सरल भाव से करता है। मै उसे स्वीकारता हूँ।'' भगवान के वचन सुनकर राजा ने उस कुलाल का दर्शन करना चाहा। उसके गाँव में पहुँचे। राजा को देखकर कुलाल ने नमस्कार किया। उसका नाम भीम था। राजा ने भीम से पूछा - ''हे राजन्! कुर्व नामक तुम्हारे राज्य के एक गाँव में भीम नामक कुलाल मेरा एक भक्त है। वह रोज अपनी झोंपडी में मेरी पूजा - अर्चना सरल भाव से करता है। मै उसे स्वीकारता हूँ।'' भगवान के वचन सुनकर राजा ने उस कुलाल का दर्शन करना चाहा। उसके गाँव में पहुँचे। राजा को देखकर कुलाल ने नमस्कार किया। उसका नाम भीम था। राजा ने भीम से पूछा - ''हे भीम! तुम श्रीनिवास की पूजा किस प्रकार कर रहे हो?'' राजा की जिज्ञासा सुनकर कुलाल भीम ने कहा - ''हे राजन्! मुझे पूजा - अर्चना विधान मालूम ही नहीं है। मेरी पूजा के बारे में आपसे किसने कहा?'' राजा ने कहा - ''स्वयं प्रभु श्रीनिवास ने ही बताया है।'' राजा की बातों को सुनकर भीम ने श्रीनिवास के वरदान को स्मरण किया और समय तुम्हारी पूजा प्रकाश में आयेगी तब राजा तोंडमान आकर तुम से मिलेंगे। उसी समय तुझे मेरी प्राप्ति भी होगी।'' कुलाल भगवान के वरदान का वृत्तांत कह ही रहा था कि वहाँ एक

प्रकाशवान विमान प्रत्यक्ष हो गया। विमान में सुशोभित श्रीनिवास को भक्त भीम ने नमस्कार किया। फिर पत्नी के साथ राजा की आँखों के सामने ही उस में चढ़कर दिव्य रूपधारी बन वैकुण्ठ की ओर प्रस्थान किया।

इस महाद्भुत को देख कर राजा तोंडमान राजधानी लौटे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्रीनिवास नामक अपने पुत्र को राज्याधिकार सौंप कर तपस्या के लिए चले। दीर्घकालिक उनकी तपस्या से संतुष्ट हो कर वेंकटपति श्रीदेवी भूदेवी सहित राजा के सामने प्रत्यक्ष हुए और कहा - ''हे भक्तवर तोंडमान! तुम्हारी तपस्या से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। अब बताओ तुम्हें क्या चाहिए। वर माँगना।'' इस पर तोंडमान ने गद्गद स्वर में श्रीपति से प्रार्थना की - ''हे परंधाम! वेंकटशैलपति! जरामरण रहित हो मैं आपके लोकवासी मात्र बनना चाहता हूँ। यही मेरी आशा और कामना है। ऐसा वर प्रदान कर मुझे अनुगृहीत कीजिए।'' भगवान ने भक्त की आकांक्षा संपन्न की। तोंडमान ने सशरीर सारूप्य मुक्ति प्राप्त की। विष्णु सारूप्य मोक्ष प्राप्त कर तोंडमान ने शोक रहित जरामरण मुक्त पुनरावृत्ति रहित वैकुण्ठ वास प्राप्त किया।

श्रुणुयाद्यः पठेद्भक्त्या कथां पुण्यां पुरातनीम्।
सन्तु भुक्त्वाखिलान्कामा नन्ते विष्णुपदं व्रजेत्॥
श्री वराहपुराणोक्त श्रीवेंकटाचलमाहात्म्यम्

द्वितीयाश्वास संपूर्ण।

* * *

तृतीयाश्वास

श्रीशेषशैल गरुडाचल वेंकटाद्रि
नारायणाद्रि वृषभाद्रि वृषाद्रिमुख्याम्।
आख्यां त्वदीयवसतेरनिशं वदन्ति
श्रीवेंकटाचलपते तव सुप्रभातम्॥

1) मुनियों द्वारा सूत महर्षि से वेंकटाचल माहात्म्य कहने की प्रार्थना करना।

''हे सूत महात्मा! इतः पूर्व आपने करिगिरि माहात्म्य और जगन्नायक माहात्म्य बताकर हमें कृतार्थ किया है। अब श्रीवेंकटेश्वर माहात्म्य सुनने की जिज्ञासा हम में है। कृपा करके हमें बताइएगा।'' - मुनियों ने सूत महामुनि से प्रार्थना की। तब सूत जी ने उन्हें संबोधित करके कहा - ''हे मुनिप्रवर! श्रीवेंकटेश्वर माहात्म्य सुनने की आपकी जिज्ञासा मेरे लिए आनंददायक है। मैंने पहले श्रीनिवास की माहात्म्य व्यास जी से सुना था। उसी को अब मैं आपको बताऊँगा। ध्यान से सुनिएगा।'' - इतना कह कर सूत जी वेंकटाद्रि माहात्म्य इस प्रकार वर्णित करने लगे।

''कलियुग में श्री वैकुण्ठगिरि का माहात्म्य गायन और श्रवण सर्वदुःखहर हैं। धन की कामना करनेवालों को धन की प्राप्ति, पुत्र चाहनेवालों को सत्पुत्र प्राप्ति, रोगार्त को रोग से मुक्ति, जिज्ञासू को ज्ञान-प्राप्ति भगवान की कृपा सो सरल हैं। श्रीगिरि माहात्म्य श्रवण से ब्रह्मा ने ब्रह्म पद पाया है। नीलकण्ठने निर्विष होकर सुख प्राप्त किया है। इन्द्र को स्वर्ग लोक का अधिकार मिला है। दिक्पालकों को

अपने-अपने स्थानों का आधिपत्य सम्प्राप्त हो गया है। श्रीवेंकटेश माहात्म्य श्रवण अनन्त फलदायक है -

कृते वृषाद्रिं वक्ष्यंति त्रेतायामंजनाचलम्।
द्वापरे शेषशैलं तु कलौ श्रीवेंकटाचलम्।।
नामानि युगभेदेन शैलस्यास्य भवन्ति हि।।

2) कृतयुग में वृषाचल अभिधान वृत्तांत

कृत युग में वृषासुर नामक राक्षस श्री शेषशैल पर्वत प्रान्त को अपने अधीन कर मुनियों को सता रहा था। तब सब मुनि भक्त वरद श्रीनिवास के शरण में गये। श्रीनिवास प्रत्यक्ष होकर उनकी व्यथाएँ दूर करने की प्रतिज्ञा कर अन्तर्धान हुए।

वृषभासुर प्रति दिन तुंबुरु तीर्थ में स्नान करता है। श्रीनृसिंह सालग्राम की पूजा करता। पूजा के बाद अपने सिर को काटकर एक फूल के साथ भगवान को अर्पित करता है। भगवान की कृपा से सिर अर्पित करने के तुरन्त बाद फिर पुनः आकर धड़ से मिल जाता है। इस प्रकार उसने पाँच हजार वर्ष भगवान की आराधना की। तब जाकर श्रीमन्नारायण प्रत्यक्ष हुए। उस वक्त असुर ने भगवान से प्रार्थना की - ''हे भगवन! मुझे मोक्ष नहीं चाहिए। स्वर्ग की आपेक्षा भी नहीं है। परमपद मैं नहीं चाहता हूँ। मेरी एक मात्र कामना है आपसे युद्ध करने की।' भक्त की इच्छा का तिरस्कार भगवान कैसे कर सकते हैं? स्वीकार किया। दोनों के बीच युद्ध आरंभ हो गया। युद्ध में भगवान जिस रूप को ग्रहण कर उसके सामने आते हैं वृषभासुर भी उसी रूप में मैंदान में उतरता। वे विश्वरूपी हों तो वह भी विश्व रूपी बनता, वे गरुडवाहनारूढ़ हो कर युद्ध के लिए तैयार होते तो

वह भी एक और गरुड पर आरूढ़ हो भगवन से युद्ध के लिए तैयार होता। अन्त में श्रीमन्नारायण ने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। तब असुर ने हाथ जोडकर श्री महाविष्णु से कहा - 'हे चक्रपाणी! मैं ने सुदर्शन चक्र की महिमा सुनी है। यह अमोघ शक्ति समन्वित है। मैं यह भी जानता हूँ कि चक्रहतों को परमधाम अवश्यं भावी है। चक्रानल से दग्ध होकर मैं कहाँ जाऊँगा?' विनती के साथ वह चक्री के सामने दण्डवत हो कर प्रार्थना करने लगा - 'हे भगवान! यह शैल मेरे नाम से प्रसिद्ध हो जाय, यही मेरी अन्तिम कामना है।' नारायण ने कहा 'तथास्तु'। तत्पश्चात् वृषभासुर को श्रीनिवास ने अपने बाहुओं में ले लिया। अन्ततोगत्वा उसे परमपद की प्राप्ति हो गयी। उसके नामपर उस पर्वत का नाम वृषभाचल पड़ा।

3) त्रेता युग में अंजनाचल नाम से अभिहित होने की पूर्व गाथा

त्रेता युग में केसरी की पत्नी अंजनादेवी संतान के अभाव में दुःखी थीं। एक दिन वे मतंग महर्षि के पास गयीं। सभक्ति नमस्कार कर उनसे अपने दुःख की बात कही। अंजनादेवी की इच्छा को जानकर मतंग मुनि ने उन्हें आदेश दिया - ''हे देवी! पंपा सरोवर के पूर्व भाग में पचास योजन की दूरी पर नृसिंह क्षेत्र है। उस के दक्षिण में नारायण गिरि है। नारायण गिरि के उत्तर पार्शव में श्री स्वामी पुष्करिणी है। उससे एक कोस की दूरी पर अकाशगंगा तीर्थ है। वहाँ जाकर द्वादश वर्ष की तपस्या करना। उसके पुण्य फल के रूप में आपको सुपुत्र की प्राप्ति होगी।'' महर्षि के सांत्वनापूर्ण शब्द अंजनादेवी के लिए अत्यंत सुखद रहे।

मुनि के आदेशानुसार अंजनादेवी ने स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान किया। अश्वत्थ वृक्ष की परिक्रमा की। श्री वराहस्वामी का दर्शन किया। फिर वे आकाशगंगा तीर्थ पहुँचीं। अपने पतिदेव और अन्य मुनियों से अनुमति लेकर निराहार नियम के साथ तप का आरंभ किया। व्रत की समाप्ति के साथ साथ महाबली वायु देव के वीर्य प्रपूरित फल अंजनादेवी को प्रदान किया गया। उसे उन्होंने प्रसाद वत स्वीकार किया। गर्भवती हुईं। दसवें माह में वायु समान बलवान पुत्र हुआ। उसे आंजनेय नाम रखा गया। बाद में उनको हनुमान नाम भी मिला। अंजना देवी के तप का पर्वत होने के कारण उस पर्वत को अंजनाद्रि नाम स्थिर हुआ।

4) द्वापरयुग में श्री शेषशैल नाम

वैकुण्ठ में श्रीमन्नरायण एक बार श्री लक्ष्मी समेत हो आनंद में थे। तब शेष जी स्वर्ण वेत्रधारी होकर द्वार रक्षक का कर्तव्य निभा रहे थे। उसी समय महाबलवान वायुदेव विष्णु भगवान के दर्शनार्थ वैकुण्ठ आये। वे भगवान विष्णु से तुरन्त मिलना चाहते थे। शीघ्र दर्शन चाहने लगे। सर्पराज ने वायुदेव से भगवान के एकांत चाहने की बात कह कर अपने वेत्रदण्ड से रोका। वायुदेव भी विशेष कार्यार्थी होकर ही वैकुण्ठपुराधिपति का दर्शन चाहते थे। उन्हें जब बलात् रोका गया तो बहुत क्रोधित हुए। वायुदेव ने जब क्रोध में आकर रोकने का कारण पूछा तो शेषराज ने कहा - ''लक्ष्मीवल्लभ अन्तःपुर में लक्ष्मी समेत एकांत में हैं। उनकी आज्ञा है कि उनके एकांत का भंग न हो। इसी लिए मैं यहाँ हूँ।'' तब वायुदेव ने कहा - ''पहले जयविजयों ने भी अहंकारवश इसी प्रकार सनकादि मुनियों

को रोका था। उनके शाप के कारण ही रावण - कुंभकर्ण के रूप में उन्हें राक्षस रूप लेना पड़ा। क्या इसका पता तुम्हें नहीं है?'' शेष और वायु के बीच वाग्विवाद बढ़ा। द्वार की बातें लक्ष्मी जी ने सुनीं। कलह रोकने की प्रार्थना श्रीपति से की। नारायण के प्रवेश से कलह तो मिटा, परन्तु शेष चुप नहीं रह सके। वे बोले - ''मैं अमित पराक्रमशाली हूँ। मेरे समान जग में और कोई नहीं है।'' शेष के अहं भरे शब्द नारायण को रुचे नहीं। उन्होंने कहा - ''बातों से कोई काम बननेवाला नहीं है। क्रिया में पराक्रम को निरुपित होना है। मेरू पुत्र आनंद पर्वत के उत्तर भाग में हैं। उन्हें अपनी शक्ति से घेरकर बान्धे रखो। ये वायुदेव उस पर्वत को हिला सकता है तो वह तुमसे बलवान है। अन्यथा तुम उससे बलवान माने जाओगे।''

बस, शेष ने जाकर आनन्दगिरि घेरकर पकड़ रखा। वायुदेव ने उन्हें हिलाने के लिए अपनी संपूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। दोनों अपने अपने स्थान पर शक्तिशाली थे। किन्तु आनन्द पर्वत हिला ही नहीं। इंद्रादि देवताओं ने बल परीक्षण छोडने की प्रार्थना की। वायुदेव कुछ भी नरम नहीं हुए। देवन्द्र और अन्य देवताओं ने शेष से विनती की। देवताओं की इच्छा के अनुरुप और भगवान के मनोरथ को भी ताड़ कर शेष ने अपनी गिरि पकड़ को कुछ ढ़ीला किया। तब भूधर बढ़ने लगा। वायुदेव के बल के कारण वह दक्षिण दिशा में एक योजन पर्यन्त उडकर जाने लगा। मेरू ने अपने पुत्र की स्थिति को देखकर उसकी रक्षा की प्रार्थना वायुदेव से की। शेष परिवेष्टित उस पर्वत को वायु ने सुवर्णमुखी नदी की उत्तर दिशा में उतारा। तब सब देवता समूह ने मिल कर वायु से कहा - ''हे वायु! यह आनंद पर्वत

शेषांश संभूत है। अपने वास स्थान के लिए हरि चोदन से प्रभावित है। तुम्हारे विवाद के कारण सुवर्णमुखी तट पर पहुँचाया गया है। यही मायावी भगवान की एक श्रेष्ठ क्रिया है। तुम्हें मोह में डालकर उन्होंने यह कार्य कराया है। चाहे जो भी हो श्रीपति के आंतरंगिक भक्त फणिराज के प्रति तुमने एक प्रकार का अपराध किया है। उनसे प्रार्थनापूर्वक क्षमा माँगना अब तुम्हारा कर्तव्य है।'' देवता समूह से उपयुक्त संकेत पाकर वायुदेव ने शेष की स्तुति की और क्षमा याचना भी। शेषपरिवृत और शेषांश संभूत पर्वतराज के लिए से शेषाचल नाम व्यवहार में सिद्ध हो गया।

5) कलियुग अभिधान संबन्धी वेंकटाचल वृत्तांत

वेंकटाचल पर्वत प्रान्त के पास के कालहस्ति नामक गाँव में बहुत पहले के दिनों में पुरंदर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह सोमयाजी था। अनेक यज्ञ करने के उपरांत कोई सोमयाजी बनता है। नाम के साथ 'सोमयाजी' शब्द जुडता है। इसी लिए उसका नाम 'पुरंदर सोमयाजी' हुआ। वह शुद्ध श्रोत्रिय ब्राह्मण था। बहुत समय तक उसकी कोई सन्तान नहीं थी। पूर्व जन्म सुकृति और यज्ञों के फल के रूप में उन्हें एक पुत्र हुआ। उसका नाम माधव रखा गया। वह वेद-वेदांग विज्ञ और सकल विद्या पारंगत हुआ। पाण्ड्यदेश की कन्या चन्द्रलेखा से माधव का विवाह हुआ। उनका वैवाहिक जीवन आनन्द से गुजर रहा था।

एक दिन कामातुर माधव पत्नी से दिन के समय में ही संगम की इच्छा प्रकट की। तब चन्द्रलेखा ने पति से कहा - ''हे नाथ! यह संगम साधुसम्मत नहीं है। दिवा संगम निषिद्ध है। हमारे घर में

माता-पिता है। अग्नि होता निरंतर चलता है। सर्व साक्षी सूर्यदेव प्रकाशमान हैं। धर्मपर हो दिवा संगम की इच्छा छोडिए।'' पत्नी के वचन उसे रुचे नहीं। माधव ने तब पत्नी से इस प्रकार कहा - ''हे प्रिये! मुझमें संगम की असंयमित अभिलाषा है। मेरी मनोकामना को पूरा करना तुम्हारा धर्म है और अनिवार्य भी। हमें अच्छे पुत्र की प्राप्ति होगी। परलोक में तुम्हें सद्गति मिलेगी।'' - पति ने चन्द्रलेखा से अपनी बात कही और आकृष्ट भी किया। पति की बात वह टाल नहीं सकी। उसे एक उपाय सूझा और उसने पति से कहा - ''मैं जल संचय के मिस तालाब के पास पहुँचूँगी। आप कुश लाने के बहाने से वन की ओर आइए। वहाँ आपके अभीष्ट की सिद्धि पाइए।'' दोनों अलग - अलग घर से निकले।

गाँव के पास ही तालाब था। उससे सटकर ही एक वट वन था। वहाँ पहुँचते ही वहाँ एक अतिलोक शुन्दरी युवती को माधव ने देरवा। विप्र युवक उसकी ओर आकर्षित हो गया। तब उसने अपनी पत्नी से कहा - ''हे प्रिये! मैं तुम्हारी पति भक्ति से अत्यंत प्रसन्न हूँ। अब पति की आज्ञा है कि तुम घर लौट जाओ।'' इस पर चन्द्रलेखा भी प्रसन्न हुई। पति की बात पर विश्वास कर वह उससे आज्ञा लेकर घर लौट गयी।

पत्नी के लौटने के बाद माधव मन्मथ पीडा से ग्रस्त होकर उस सौंदर्यवती मनोहरिणी स्त्री के पास पहुँचा। लेकिन उस नारी ने इस ब्राह्मण युवक को संबोधित कर कहा - ''हे मौनिवर! मैं अन्त्यजा हूँ। मेरे पास आपका आना ठीक नहीं है। मत आइए।'' उसके प्रार्थना भरे शब्दों को सुनकर माधव ने उस से पूछा - ''हे सुन्दरी! तुम कौन हो? तुम्हारे माता - पिता कौन हैं? तुम्हारा वास कहाँ है?'' इन

प्रश्नों के प्रत्युत्तर में सुन्दरी ने कहा - ''पापिन मुझ से इस प्रकार के प्रश्न क्यों कर रहे हैं? मेरा नाम कुंतला है। मैं अन्त्य कुलोद्भवा हूँ। हमारी वृत्ति व्यभिचार वृत्ति है। हम सुरा-मांस भक्षी हैं। हमारा देश मध्य देश है। आप वेद पारंगत लगते हैं। मुझे देखना भी आप के लिए पाप हेतु है। आप मुझे धू भी नहीं सकते। मेरा संगम आप क्यों चाह रहे हैं?'' सुन्दरी के इन वचनों को सुनकर माधव ने फिर कहा - ''हे ललितांगी! तुम सर्वांग सुन्दरी हो। तुम जैसी सुन्दरी को अन्त्यजा के रूप में सृजित करनेवाले ब्रह्मा को ही अन्धा मानना चाहिए। तुम्हारे सौंदर्य को कानन की चांदनी नहीं होनी चाहित। मेरा मन तुम से विमुख नहीं हो रहा है। शायद उस ब्रह्मा ने ही मेरे मन को तुम्हारी ओर मोडा है। मेरी कामना को संतुष्ट करो। मेरी रक्षा करो।''

इस पर उस युवती ने आगे कहा - ''हे ब्राह्मण पुत्र! कुलटा से मिलनेवाले के पितरों को सौ पुरुषांतरों तक अग्नि ज्वालाओं में ज्वलित होना पडता है। यही धर्म शास्त्रों से विदित है। इसी लिए आप ऐसे पाप कार्य से अपने को दूर रखिएगा।'' उस सामान्या के शब्दों में निहित धर्म सूत्र पर माधव ने दृष्टि नहीं रखी। शास्त्र को भी विस्मृत कर विधि प्रेरित होकर उससे इस प्रकार कहा - ''लवण समुद्र से उद्भवित होने पर भी रत्न अपने निज प्रकाश से मण्डित रहते ही हैं न? इसी प्रकार तुम अन्त्यजा होने पर भी ग्राह्या हो। मरणोपरान्त मेरे पितरों को चाहे नरक ही क्यों न प्राप्त हो जाय, मैं तुम्हें चाहता हूँ।'' इतना कह कर विप्र उसकी ओर बढ़ा। उस से बचकर भागने का प्रयत्न उस सुन्दरी ने किया। उसके पीछे दौड़कर

उसे पकडा माधव ने। बलात् भोगा। तब उस युवती ने ब्राह्मण पुत्र से कहा - ''हे विप्र! अब तो तुम मेरे पति हो गये हो। चण्डालत्व तुम्हें संप्राप्त हो गया है। यज्ञोपवीत को त्यागो। मधु-मांसादि का सेवन करो। आकर हमारे घर में ही रहो।'' विप्र ने चण्डालत्व स्वीकार किया। इस प्रकार वह बीस वर्ष तक उसके साथ रहा। एक दिन उस अन्त्यजा की मृत्यु हुई। उसके वियोग में व्यथित हो कर पागल बन माधव काननों में घूमने लगा।

एक दिन की बात है। उत्तर देश से कुछ राजेन्द्र वेंकटाद्रि की यात्रा में उस मार्ग पर जा रहे थे। उन्हें माधव ने देखा। उनके पीछे -पीछे चल कर वह भी वेंकटाद्रि पहुँचा। राजाओं ने उपवास व्रत रखा तो माधव ने भी उपवास किया। सिर के बाल अर्पित किये। उन राजाओं के साथ सुदर्शन तीर्थ में पवित्र स्नान भी किये। राजाओं ने पितरों को पिडंदान किया तो माधव ने भी अपने पितरों को पिंडदान किया। इससे उसके पितर मुक्त हुए।

किं वर्णयामः पुरुषोत्तमस्य
क्षेत्रस्य तीर्थस्य च पुण्यशक्तिम्।
मत्पिंडदानात्पितरश्च तस्य
मुक्तिं प्रसन्ना मुरवैरिशासनात्।।

दूसरे दिन प्रभात वेला में सब राज समूह वेंकटाद्रि चले। माधव भी उनके साथ शेष पर्वत पहुँचा। वेंकटाद्रि के स्पर्श मात्र से उनके पाप कंपित हो छूटने लगे। अद्रि माहात्म्य से उसके अंग प्रत्यंग में अग्नि प्रवाहित होने लगी। उस अन्तराग्नि से उसके समस्त पाप जले और शरीर से उज्ज्वल कान्ति प्रसरित होने लगी। उसे देखने

समस्त देवता समूह वेंकटाद्रि आये। वहाँ पहुँचकर वेंकटाद्रि माहात्म्य की प्रशंसा करने लगे। ब्रह्मा ने वहाँ पहुँचकर उस भ्रष्ट ब्राह्मण के पास जाकर कहा - ''हे माधव! अब तुम पाप रहित हो गये हो। स्वामी पुष्करिणी में पवित्र स्नान करो। वराह मूर्ति की सेवा करो। तुम अगले जन्म में पांडवों के दौहित्र कुल में जन्म लोगे। यश प्राप्त करोगे। सुधर्म के पुत्र होकर जन्मोगे। आकाशराजा नाम से दक्षिण में तोंडमंडल के राजा बनोगे। जगन्माता लक्ष्मी देवी तुम्हारी पुत्री होगी। जगत्पति श्रीनिवास के तुम ससुर बनोगे। उस के बाद तुम्हें वैकुण्ठ वास मिलेगा।'' ब्रह्मा से इस प्रकार की बातें सुनकर माधव अत्यंत संतोषित हुआ। उसने ब्रह्मा के आदेशानुसार सब किया। ब्रह्मा ने ही इस पर्वत का नाम वेंकटाद्रि रखा।

''वें'' मानी सर्वविध पाप, ''कट'' का अर्थ 'काटना' या 'दहित करना' है। सभी प्रकार के पापों तो दहित करनेवाली अद्रि ही ''वेंकटाद्रि'' है।

सर्वपापानि वें प्राहुः कटस्तद्दाह उच्यते।
तस्माद्वेङ्कटशैलोऽयं लोके विख्यातकीर्तिमान्॥

प्रभात काल में जो वेंकटाद्रि का नाम स्मरण करेंगे वे सहस्त्र गंगा स्नान तथा सहस्त्र सेतु यात्रा फल पायेंगे।

(भविष्योत्तरपुराण - प्रथम अध्याय)

6) भगवान विष्णु का वैकुण्ठत्याग और वेंकटाद्रि आगमन

पहले कश्यप आदि मुनि जाह्नवी नदी तट पर यज्ञ कर रहे थे। वहाँ ब्रह्मर्षि नारदजी ने पधार कर पूछा - ''हे मुनिवर! यह यज्ञ

आप क्यों कर रहे हैं? इस यज्ञ के फल के भोक्ता कौन हैं? देवता समूह में ध्येय कौन हैं? यज्ञ फल किन किनको प्रदान करने जा रहे हैं? ''नारद मुनि के प्रश्नों से मुनियों के मन में शंका उत्पन्न हो गयी। तब सब मुनि नारद से ही निदान पूछने लगे। अन्ततोगत्वा शंका निवारणार्थ भृगु महर्षि से प्रार्थना की गयी। उनसे यह चाहा गया कि वे ही इस का समाधान ढूँढे। इस पर अपना निर्णय देने से पहले भृगु महर्षि ने स्वयं प्रत्यक्षतः परीक्षा ले कर अपना निश्चित अभिप्राय देना चाहा।

प्रथमतः वे ब्रह्मलोक पहुँचे। वहाँ पर श्री सरस्वती देवी से सेवित और वेदघोष में डूबे हुए ब्रह्मा को भृगु महर्षि ने पाया। उस समय चतुर्मुख दिक्पालकों के साथ मिलकर नारायण की स्तुति कर रहे थे। चतुरानन को देखकर भृगु ने साष्टांग प्रणाम किया। भृगु की ओर देखकर भी सृष्टिकर्ता ने कुछ भी नहीं कहा। तब भृगु ने अपने आप सोचा कि ब्रह्मा अज्ञानी हैं। ये यज्ञ फल पाने के लिए अयोग्य हैं। बस, ब्रह्मलोक छोडकर कैलास गिरि की ओर चले।

पवित्र कैलास पर्वत पर पहुँचकर भृगु ने देखा कि कैलासपति काम भाव से मण्डित हो गिरि तनया पार्वती से क्रीडा-विलास में डूबे थे। पार्वती ने भृगु को पहले देखा। पति को महर्षि के आगमन का संकेत किया। देवी की बात सुनकर असमय मुनि के प्रवेश से क्रोधी हो कर उन्हें मारने के लिए उद्यत हुए। भृगु महर्षि ने उनको रोक कर और उन्हें शाप देकर वहाँ से वैकुण्ठ की ओर प्रस्थान किया।

वैकुण्ठ में क्षीर सागर मध्य श्री लक्ष्मी सहित शेष शय्या पर विष्णु शयनित मिले। विष्णु की ओर से किसी प्रकार की प्रतिक्रिया

नहीं मिली। भृगु नाराज हो गये। विष्णु मूर्ति के वक्षःस्थल पर भृगु ने पैट से आघात किया। तब वैकुण्ठवासी उठे और भृगु को अपने बाहुओं में लेकर बोले - ''हे ऋषिपुंगव! अति कठोर और देव - मानवों के लिए अभेद्य, वज्र सम मेरे शरीर से आपके चरण तल ने स्पर्श किया है। आपके मृदु चरण इससे अवश्य आहत हुआ होगा। बहुत कष्ट पहुँचा होगा।'' इतना कहते कहते भृगु के पादों को जल से धोया। भगवान की इस प्रतिक्रिया से भृगु मुग्ध हो गये। मन में निर्णय लिया कि विष्णु ही यज्ञ फल प्राप्ति की योग्यता रखनेवाले पर देव हैं। ऋषि - मुनियों के पास लौट कर उन्होंने कहा -

हरिस्सर्वोत्तमः साक्षाद्रमादेवी तदंतरा।
तदधो विधिवाण्यौ च तदधः शर्वपूर्वकाः॥

इस प्रकार भुगुने हरि, विधि और शर्व के तरतम भदे को स्पष्टतः जानकर अपना निर्णय दिया। तब ऋषियों ने आनंद के साथ हरि को ही सर्वेश्वर मानकर यज्ञ फल समर्पित किया।

परन्तु श्री लक्ष्मी देवी ने अपने वल्लभ श्रीहरि से कहा - ''आप जगन्मय हैं। आपका उर मुनि के पाद से ताडित हुआ है। वही मेरा वास स्थान भी है। मैं आपकी उरवासिनी हूँ। अब मैं आपके हृदय क्षेत्र को छोडकर करवीरपुर जाकर वास करूँगी।'' श्री लक्ष्मी वैकुण्ठ छोडकर करिवीरपुर (आज का कोलहापुर) आकर बस गयीं।

वह कलियुग का आंरभिक समय था। वैकुण्ठपति सौचने लगे कि ''मैं किस प्रकार लक्ष्मी जी को पुनः प्राप्त करूँगा?'' श्री विष्णु भी वैकुण्ठ त्याग कर गंगा नदी के दक्षिण में तीन सौ योजन की दूरी पर सुवर्णमुखी नदी के उत्तर में एक कोस पर विराजित वेंकटगिरि

पहुँचे। यह वेंकटाद्रि तीन योजन चौड़ी और तीस योजन लंबी होकर अनेक पर्वत शिखरों से विराजमान है। इसके शिरो भाग में वेंकटगिरि, मध्यमें नृसिंहाद्रि और श्रीशैल पर्वत हैं। वेंकटाद्रि पर स्वामी पुष्करिणी तट के दक्षिण पार्श्व में विलसे एक तिंत्रिणी वृक्ष (इमली का पेड) के मूल में एक वल्मीक को पाकर उसी को अपनी तपस्या के लिए विष्णु ने समुचित स्थान के रूप में स्वीकार किया। उसी वल्मीक में तपस्या रत हो गये।

(भविष्योत्तरपुराण - द्वितीय अध्याय)

7) **वल्मीक में तपस्यालीन श्रीनिवास को एक गौ का क्षीर पिलाना**

वल्मीक में श्रीनिवास एक सहस्र वर्ष तपस्या रत रहे। द्वापरांत में एक उत्तम चोल राज्य पर एक राजा शासन कर रहे थे। राजा धर्मात्मा होने के कारण उस राज्य की गायें भी अधिक दूध देती थीं। वर्षाएँ सकाल पर समृद्ध होती थीं। फसलें अच्छी होती थीं। समस्त प्रजा धर्मात्मा हो कर सानंद जीवन व्यतीत करती थी।

उसी समय में ब्रह्मा एक धेनु रूप तथा शिव एक वत्स रूप धारण कर पृथ्वी पर आये। लक्ष्मी देवी गोपालिका बनी। उस गाय और बछडे का चोल राजा को बेचकर लक्ष्मी जी स्वस्थान पहुँच गयी। बहु क्षीरदा उस गाय को अपने पुत्र के पोषणार्थ चोल राजा ने खरीदा था। राजा के पशु समुदाय में यह नयी गाय भी जुड़ी।

गाय के रूप में ब्रह्मा और बछडे के रूप में शिव जी का आना श्रीनिवास को ढूँढने के लिए ही था। अन्ततोगत्वा स्वामी पुष्करिणी तट पर वल्मीक में स्वामी पाये गये। ब्रह्मा ने वल्मीक में क्षीर धाराएँ प्रवाहित की। श्रीनिवास दूध से संतुष्ट होते थे। तब से प्रति दिन गाय

भक्ति से वल्मीक में क्षीर सेचन करने लगी। राजा के पुत्र के लिए दूध नहीं मला। चोल राजा की पत्नी ने गोपालक से पूछा कि क्यों गाय का थन दूध से रिक्त हो रहा है? राणी ने शंका व्यक्त की - ''हे गोपालक! लगता है कि तू अपने बच्चे के लिए दूध चुरा ले जा रहा है। अन्यथा तू स्वयं पी रहा है। नयी गाय का दूध सुस्वादपूर्ण है न! इस लिए तू ऐसा काम कर रहा है।'' राणी का क्रोध जान कर गोपालक ने अपनी निर्दोषिता बताकर कहा - ''हे महाराणी जी! मैं इतना दुष्ट नहीं हूँ। मैं भी यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि ऐसा क्यों हो रहा है। गाय का थन तो भरा-भरा रहता है और वन से लौटने पर रिक्त मिलता है।'' इतना कह कर इसका कारण जानने का वादा कर वह चला गया।

8) गोपालक का एक कुठार लेकर निकलना

दूसरे ही दिन दूध से रिक्त होने के कारण का पता लगाने के लिए मन में ठान कर एक कुठार हाथ में लेकर गोयों के पीछे वन में गया। वहाँ जाकर उस गाय के निरीक्षण में लगे रहा जिसे गोपालिका से राजा ने खरीदा था। गाय वल्मीक के पास गयी। वहाँ जाकर बाँबी में क्षीर प्रवाहित करने लगी। यह देखकर गोपालक को गाय पर क्रोध उमड़ा। गाय को दण्डित करने कुठार उठाकर उसके सिर पर जोर से आघात करने का प्रयास किया। तभी गाय को बचाने के लिए वल्मीकांतर्गत श्रीनिवास ने कुठार का आघात स्वयं स्वीकारा। गाय सुरक्षित हो गयी। श्रीनिवास गाय और कुठार के बीच में आये। कुठाराघात से श्रीनिवास के सिर पर चोर लगी। उससे सप्त ताड़ वृक्ष प्रमाण एक रक्त स्फूर्ति का उद्भव हुआ। सात ताल

वृक्ष की ऊँचाई से उद्भूत उस स्फूर्ति के देख कर गोपालकने अपने प्राण ही छोडे। गोपालक के मरणोपरांत गाय राजा के मंदिर में पहुँचकर राजा के सामने व्यथा व्यक्त करती हुई जमीन पर गिरी। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी। गाय की विह्वलता देखकर गाय को अन्य गायों की झुण्ड में पहुँचाने के लिए एक गोपालक को आदेश दे कर स्वयं राजा का सेवक में गया। वहाँ रक्त स्फूर्ति का वह भयंकर स्वरूप देखा। सात ताड़ वृक्ष प्रमाण था। राजा के पास पहुँचकर उस ने इस की सूचना दी।

9) श्रीनिवास का चोल राजा को शाप देना

चोल राजा तुरन्त वेंकटाद्रि पहुँचे। वहाँ वल्मीक के पास जाकर गोपालक का शव देखा। क्रोध भरे स्वर में पूछा - ''यह कैसा घातुक है? पूरा वल्मीक रक्त रंजित है। किस पापी से गोपालक का संहार हुआ है? गौ के द्वारा इस समाचार का मेरे पास तक पहुँचना आश्चर्य की बात ही है। कौन है यहाँ?'' राजा के क्रोध भरे शब्द सुनकर श्रीनिवास वल्मीक को भेद कर बाहर आये। राजा से बोले- ''हे राजा! तू ही महान पापी है! दुराचारी है! राजा अहंकार में डूबा है। मैं यहाँ अनाथ हूँ। भार्या रहित हूँ। बन्धु जन विहीन हूँ। यहाँ तपस्या कर रहा हूँ। ऐसे मुझ पर तेरे गोपालक ने कुठार से आघात किया है। मेरे सिर पर चोट लगी है। गृह यजमान अगर सत्यवान और धर्मवान नहीं है तो उसके परिवार के पाप राजा को ही लगते हैं।'' इतना कह कर श्रीनिवास ने राजा को पिशाच हो जाने का शाप दिया। झट राजा को पिशाचत्व प्राप्त हो गया।

(भविष्योत्तरपुराण - तृतीय अध्याय)

10) श्रीनिवास का चोल राजा को वरदान

पिशाच रूप पाये राजाने श्रीनिवास से प्रार्थना की - ''हे स्वामी! मुझे इस सब का थोडा भी ज्ञान नहीं है। निरपराधी मुझे आपने क्यों शाप दिया है? बिना सोचे - विचारे शाप देना कहाँ का न्याय है? मैं तो कुछ भी नहीं जानता था। मात्र सेवक की मृत्यु पर दुःखी था। मुझे आपने क्यों इतना कष्ट दिया?'' तब श्रीनिवास ने समाधान के साथ उत्तर दिया - ''हे राजन्! मैं ने भक्त वात्सल्य से हो ऐसा किया है। मेरे भक्तों को कोई किसी भी प्रकार का कष्ट देता है तो मैं सहन नहीं कर सकता। भक्ति भाव से ही गाय मुझे रोज दूध देती थी। वैसे तुम भी भक्त ही हो। परन्तु मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायेगा। युगान्त तक तुम ऐसे ही रहोगे। उसके बाद तुम आकाशराजा के रूप में जन्म पाओगे। तुम्हें अयोनिजा पुत्री मिलेगी। उसका कन्यादान तुम मेरे साथ करोगे। शुक्रवार के सायं समय में मैं सुवर्ण किरीट धारण करूँगा।'' शाप से मुक्ति का मार्ग सुनकर राजा प्रसन्न हुए।

(भविष्योत्तरपुराण - चतुर्थ अध्याय)

11) श्री वराह स्वामी का श्रीनिवास को वेंकटाद्रि पर वास के लिए स्थल दान

एक दिन श्री वराह स्वामी वृषभासुर को मार कर लौट रहे थे। रास्ते में अरुणोदय के समय वेंकटाचल विहरण से लौटनेवाले श्रीनिवास को उन्होंने देखा। उन्हें देखकर वराह स्वामी ने पूछा - ''तुम कौन हो?'' गर्जन करते हुए उनके पीछे दौडे। तुरन्त श्रीनिवास वल्मीक में विलीन हो गये। वराह स्वामी ने उन्हें वैकुण्ठ को त्याग कर वेंकटगिरि पर रहनेवाले महाविष्णु समझा। श्रीनिवास भी वराह

स्वामी को पहचानकर वल्मीक से बाहर आये। भिन्न रूपों में भुवि पर अवतरित महाविष्णु द्वय को देखकर देवता समूह ने पुष्प वृष्टि की। पृथ्वी पर उतर कर नारायण के दोनों रूपों की प्रशस्ति गायी।

देवता गण के अपने अपने स्थानों की ओर प्रस्थान के बाद श्रीनिवास से वराह स्वामी ने वैकुण्ठ छोड आने का कारण पूछा। श्रीनिवास ने बताया - ''हे वराह स्वामी जी! भृगु महर्षि के पाद ताडन से मेरे स्थल को श्री देवी ने दूषित समझा। उसी कारण वे वैकुण्ठ छोडकर कोल्हापुर चली आयी हैं। मैं भी उसी कारण से व्यथित होकर इस गिरि के दक्षिण भाग में आप के समीप में ही एक वल्मीक में रहने लगा हूँ। ऐसे मुझ पर एक गोपालक ने कुठार से आघात किया है। उसकी पीडा से निवारण पाने औषधियों के अन्वेषण में यहाँ घूम रहा हूँ। अगर आप मुझे रहने के लिए स्थान देंगे तो मैं भी यहीं रहूँगा।'' इस पर वराह स्वामी ने कहा - ''हे श्रीनिवास! उचित मूल्य देंगे तो अवश्य स्थान मिलेगा।'' श्रीनिवास ने तब कहा - ''हे स्वामी मेरे पास अब क्या है? धन तो नहीं है। धन के बदले में मैं प्रथम दर्शन और प्रथम नैवेद्य पाने का अधिकार आपको दूँगा।'' यह प्रस्ताव वराह स्वामी को अच्छा लगा। श्रीनिवास को रहने के लिए पाद शत मात्रा क्षेत्र प्रदान किया। इस प्रकार वराह स्वामी और श्रीनिवास दोनों ने एक मत हो कर भक्तों की कामनाओं की सिद्धि का मार्ग प्रशस्त किया। वैसे भिन्न भिन्न युगों में भिन्न भिन्न रूपों में महाविष्णु एक ही हैं। श्रीमन्नारायण स्वरूप ही हैं। तब से वराह स्वामी ने अपनी सेवा में रहनेवाली वकुलमालिका को श्रीनिवास की सेवा के लिए भेज दिया। वकुलमालिका प्रति दिन श्रीनिवास को भोजन की व्यवस्या करने में लीन हो गयी।

द्वापर युग में यशोदा देवी श्री कृष्ण की दायी माँ थी जिसने अपने को उनकी माता ही समझकर पाला - पोसा था। वासुदेव को अनन्त कल्याण युक्त रूप को देखकर वह संतुष्ट नहीं हुई। उनकी इच्छा थी कि वह भगवान का एक विवाह अपने द्वारा संपन्न करे। श्री कृष्णावतार में उनके किसी भी विवाह में यशोदा ने भाग नहीं लिया था। इस मनोरथ की पूर्ति आगे के जन्मान्तर में संपन्न करने का वर श्री कृष्ण ने माता यशोदा को दिया था। उसी वर के अनुसार यशोदा ने कलियुग में वकुलादेवी के रूप में जन्म पाया। श्रीनिवास के पृथ्वी पर आगमन समय तक वह वराह स्वामी की सेवा में रही। श्रीनिवास के दर्शन के बाद वकुलादेवी उनकी सेवा में चली गयीं।

कलौ कलुषचित्तानां पापाचाररतात्मनाम्।
रक्षणार्थं रमाकान्तो रमते प्राकृतो यथा।।
बहु जन्मार्जितैः पुण्यैर्लभ्थते क्षेत्रदर्शनम्।
तत्रापि वेङ्कटगिरेर्दर्शनं मुक्तिदं परम्।।

12) आकाशराजा को संतान प्राप्ति का विधान

द्वापर युगान्त में महाभारत युद्ध हुआ था। तत्पश्चात् विक्रमार्क आदि राजाओं के स्वर्गवास के उपरांत कलियुग में समीर नामक चन्द्रवंशी राजा का जन्म हुआ। उनके पुत्र सुधर्म को आकाश और तोंडमान नामक दो पुत्र हुए। वे दोनों धर्मप्रिय और दृढ़ भक्त थे। नारायण परायण थे। राजा सुमीर के ज्येष्ठ पुत्र आकाश राजा हुए। उनके शासन में तोण्डदेश स्वर्ग तुल्य था। लेकिन बहु काल तक उनको संतान की प्राप्ति नहीं हुई। संतान प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने कुल गुरु से उपाय बताने की प्रार्थना की। गुरु ने एक यज्ञ

संपन्न करने की सलाह दी। सुयज्ञ से सुपुत्र प्राप्ति की बात कही। गुरु के आदेशानुसार यज्ञार्थ भूमि को परि शुद्ध करना था। हल चलाया गया। भूमि कर्षण से एक सहस्त्र दल कमल के आकार में पेटी दिखी। राजा को आश्चर्य हुआ। उस में सर्वांग सुंदरी एक स्त्री शिशु थी। राजा ने उसे दैव प्रसाद मानकर स्वीकार किया। उस बच्ची को हाथों में लिये ही थे कि आकाशवाणी सुनाई पडी - ''हे राजन! यह आपकी पुत्री ही हैं। इसकी रक्षा और पालन का भार आप ही वहन कीजिए। यह आप को विशेष यश प्राप्त करानेवाली होगी।'' सुनकर आकाशराजा आनंद विभोर हुए। उसे दैव दत्त पुत्रिका मानकर उन्होंने उसे राणी के हाथों में सौंपा। पद्म में उत्पन्ना होने के कारण उस बच्ची का नाम पद्मावती रखा गया।

गृह में नव शिशु के आगमन का मुहूर्त ही शुभ था। राणी भी गर्भवती हुईं। सभी मंगल कार्य यथाविधि संपन्न किये गये। दसवें महीने में राणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्मोत्सव अत्यंत आनन्द के साथ मनाया गया। बारहवें दिन नामकरण किया गया। नाम रखा गया वसुदास। दिन-दिन प्रवर्द्धमान पुत्रिका और पुत्र को देखकर राजा और राणी दोनों ने परिपूर्ण आनन्द पाया। पद्मावती युक्त वयस्का हुई। राजा को कन्या के लिए उपयुक्त वर की चिंता होने लगी।

13) नारद जी का आकाशराजा की पुत्री पद्मावती के लिए शुभ वचन कहना

पद्मावती देवी फूलों के चयन के लिए सखियों के साथ उद्यानवन में प्रायः जाया करती थी। ऐसे ही एक दिन फूल चुनने के लिए वे

बगीचे में गयीं। फूल बटोरकर एक वृक्ष की छाया में बैठी थीं। उस समय एक वृद्ध तापसी के रूप में नारद जी वहाँ पहुँचे। उन्हें देखकर पद्मावती जी पहले घबराईं। तब नारद जी ने उन्हें सांत्वना देकर कहा - ''मैं आपके कुलगुरु हूँ। मुझे पितृ समान मानकर हाथ दिखाना। शुभ भविष्य बताऊँगा।'' पद्मावती ने आश्वस्त होकर हस्त दिखाया। नारद जी ने हस्त रेखाएँ देखकर पद्मावती को बताया - ''हे पुत्री! आप के लिए उपयुक्त वर लोकेश्वर ही हैं। श्रियः पति रमापति ही आपको पति के रूप में प्राप्त होनेवाले हैं।'' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

(भविष्योत्तरपुराण - षष्ट अध्याय)

14) पद्मावती को श्रीनिवास का दर्शन और उनसे वार्तालाप

श्रीनिवास उस दिन मृगया विनोदार्थ घोडे पर सवार हो कर वेंकटगिरि पर्वत से उतर कर परिसर में व्याप्त वन - सीमा में विचरण कर रहे थे। इतने में एक मस्त हाथी वहाँ दिखा। उसका पीछा करते हुए श्रीनिवास अश्व पर चले। डेढ़ योजन पर्यन्त भाग कर हाथी हरि को पद्मावती के पास तक ले गया। उस समय पद्मावती उद्यानवन में पुष्प चयनार्थ दिन चर्या क्रम में आयी थी। दौड़ता हुआ हाथी ने उन तक पहुँच कर घींकृति कर फिर हरि की ओर मुडकर पैरों पर झुककर प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह वन में चला गया।

गज के निष्क्रमण के बाद श्रीनिवास ने पद्मावती को देखा। वे और उनकी सखियों हाथी की घींकृति से डर कर वृक्षों के पीछे चुप

गयी थीं। श्रीनिवास उनके पास पहुँचे। पास आये श्रीनिवास को देखकर सखियों ने उन के बारे में पूछा - ''हे महानुभाव! आप कौन हैं? यहाँ तक क्यों आये हैं? यहाँ आपको क्या काम है? इस उपवन में पुरुषों के लिए प्रवेश निषिद्ध हैं। यहाँ से शीघ्र वापस चले जाइए।''

तब श्रीनिवास ने कहा - ''मुझे राज कुमारी से काम है।''

सखियों ने प्रश्न किया - ''आपका उन से क्या काम है?'' आपका नाम क्या है? आप के माता पिता कौन हैं? आप कहाँ रहते हैं? आप का वंश क्या है? आपका गोत्र क्या है? आपके कोई सहोदर हैं क्या?''

पद्मावती की सखियों की प्रश्न परंपरा पर मुस्कुराते हुए श्री हरि ने कहा - ''मैं कन्या की अपेक्षा लेकर आया हूँ। मैं उन्हीं को अपना कार्य बताऊँगा।'' सखियों के लिए यह समाधान देकर पद्मावती को लक्षित करके श्रीनिवास ने कहा - ''हमारे बढ़ों ने हमारा वंश सिन्धु पुत्र वंश बताया है। मेरे पिता जी का नाम वसुदेव और माताजी देवकी है। बलराम जी मेरे बडे भाई हैं। सुभद्रा मेरी बहिन है। पार्थ हमारे सखा हैं। पांडव मेरे संबन्धी हैं। मेरा जन्म कृष्ण पक्ष में कृष्णाष्टमी के दिन पर हुआ है। वर्ण भी कृष्ण होने के कारण मुझे सब लोग कृष्ण ही कहते हैं। यही मेरा सामान्य परिचय है। अब मैं आप के वंश और गोत्र जानना चाहता हूँ।''

पद्मावती सकुचाई हुई बोली - ''मैं आकाशराजा की तनया हूँ। नाम मेरा पद्मावती है। हमारा वंश चंद्रवंश और अत्रि गोत्र है। अब आप शीघ्र यहाँ से जाइएगा।''

पद्मावती के वचन सुनकर श्रीनिवास ने प्रसन्नता से कहा - ''आप क्यों इतनी निष्ठुरता से बात कर रही हैं? मृदु बोल बोल सकती हैं। मैं मन से आप को चाहता हूँ। मेरा अभिमत है कि मैं ही आप के लिए उपयुक्त पात्र हूँ। अपने को मुझे अर्पित कर आप स्वर्ग पाइएगा। वृथा निष्ठुर वचन छोडिएगा।''

श्रीनिवास के शब्दों को सुनकर पद्मावती नाराज हो गहीं। क्रोध में आकर बोलीं - ''बस कीजिए! आप कन्या के सामने जिन बातों को बोलना नहीं चाहिए उन्हीं को बोल रहे हैं। लगता है कि आप में जीने की इच्छा नहीं रह गयी है। मेरे पितृदेव आकाशराजा हैं। वे आपको देखेंगे तो अवश्य मृत्यु दण्ड देंगे। उनकी दृष्टि पडने से पहले ही यहाँ से भाग जाइए। अन्यथा अच्छा नहीं रहेगा।''

फिर श्रीनिवास ने कहा - '' 'जातस्य मरणं ध्रुवम्' जो जन्मा है उसे पूर्व जन्म कर्मानुसार मरण मिलेगा। मरण का वरण करके ही आपको मैं पाने की बात कर रहा हूँ। सुना है कि आकाशराजा धर्मात्मा है। जब तक मैं कोई पाप नहीं करूँगा तबा तक वे मुझे कैसे मापेंगे? आप कन्या हैं। इसी लिए मैं आपका वरण करना चाहता हूँ। इस में अन्याय कहाँ है और पाप कहाँ हैं?'' - कहते हुए श्रीनिवास ने पद्मावती की ओर कदम बढाये। तब पद्मावती ने चेतावनी के स्वर में कहा - ''अपने माता - पिता और बन्धु जनों को छोडकर आप क्यों व्यर्थ मृत्यु चाह रहे है?'' इस पर श्रीनिवास ने उत्तर दिया - ''विधि का लेखा यही है तो उसका अतिक्रमण कैसे संभव है? मुझे जय मिले अथवा पराजय मैं तो आपको चाहूँगा ही।'' इन वचनों के साथ श्रीनिवास पद्मावती के और निकट पहुँचने का यत्न करने लगे। तब

पद्मावती की सखियों ने उनपर पत्थरों की वर्षा की। श्रीनिवास आहत हुए। गृह लौटकर व्याधिग्रस्त हुए। शय्याधीन हो गये।

(भविषयोत्तरपुराण - सप्तम अध्याय)

15) श्रीनिवास का वकुलादेवी से अपनी मनोकामना कहना

वकुलामाता भक्ति और प्रेम के साथ खाना बनाकर लायी। श्रीनिवास के सामने रखकर कि वे रोज की तरह नहीं रहे। दीर्घ निश्वास छोडते हुए मिले। आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। देखकर वह कुछ क्षण के लिए स्तब्ध रह गयी। अपने को संम्हाल कर पूछी - ''हे श्रीनिवास! यह क्या बना रखा है? मैं ने कभी इस प्रकार तुम्हें दुःखी नहीं देखा। अपने मन की बात बताओ खाना लायी हूँ। खाओ।'' श्रीनिवास चुप ही रहे। फिर वकुलामाता ने पूछा - ''हे श्रियःपति! यह क्या बात है? वन में तुमने कुछ देखा है क्या? तुम हमेशा आनन्द में रहते हो। आज तुम्हारा मन विकल क्यों है? बताओ तुम्हें क्या चाहिए वन में कहीं कोई कन्या मिली क्या? क्या तुमने अपना मन उसे दे रखा है क्या? तुम्हें अपनी ओर खींचनेवाली वह कन्या कौन है? मैं अपनी ओर से प्रयास कर उसे तुमसे मिलाऊँगी। तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी होगी।'' माता के आश्वासन भरे शब्द सुनकर श्रीनिवास ने वन का वृत्तांत बताते हुए कहा - ''माँ! मैं ने पद्मावती नामक एक उत्कृष्ट कन्यका को देखा है। वे आकाशराजा की तनया हैं। मेरा मन उनको चाहने लगा है। मैं उनसे विवाह सूत्र में बँधना चाहता हूँ। इसे संभव बनाओ। अन्यथा मैं जी नहीं पाऊँगा। मैं ने पास जाने का प्रयत्न किया है तो उन्होंने मुझ पर पत्थर गिरवाकर तन और मन को घायल भी किया है। उनको देखकर तुम

भी मानोगी कि मेरी चाह सही ही है। मेरे लिए यह संभव बनाओ माँ।'' ये श्रीनिवास के अनुनय भरे शब्द थे।

16) पद्मावती देवी का पूर्व जन्म वृत्तांत

श्रीनिवास की विकलता वकुलामाता देख नहीं सकी और बोली - ''हे श्रीनिवास तुमने जिस कन्या को देखा है वे कहाँ रहती हैं? उनसे मैं कैसे मिल सकती हूँ? मार्ग तुम ही बताओ? मैं तुरन्त जाऊँगी। वे कौन हैं? उनका वृत्तांत बताओ?'' तब वकुलादेवी से श्रीनिवास ने इस प्रकार कहा - ''अवश्य मैं उनके पूर्व जन्म का वृत्तांत बताऊँगा। त्रेता युग में मैं ने राम का अवतार लिया था। पिता की आज्ञा का पालन करने मैं सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में पहुँचा था। तब रावण ने आकर मुझे और लक्षण को कुटी से दूर जाने का मौका पाकर सीता को लेकर लंका चला गया। उस समय सीता के आर्तनाद को सुनकर अग्नि देव उसके सामने प्रत्यक्ष हुए और रावण को सचेत भी किया कि 'हे रावण! तू संभल जा। ये जनक की पुत्री नहीं है। तुम से डर कर राम की जानकारी से ही जानकी मेरे पास छिपा दी गयी हैं। तुम मेरे दोस्त हो। इसी लिए मैं तुम्हें असली सीता को लाकर दूँगा।' इतना कर सीता को अग्निदेव साथ ले गये। उन्हें स्वाहा देवी को सौंप कर उनके स्थान पर वेदवती को लाकर रावण को सौंपा। वेदवती पहले रावण द्वारा अपमानित थीं। वे रावण वध की प्रतिज्ञा लेकर मेरे पास रही थी। मेरे पास रहनेवाली वेदवती को ही सीता मानकर रावण के पास पहुँचाया गया। उन्हीं को रावण असली सीता समझकर अपने साथ लेकर लंका पहुँचा। रावण ने माया सीता को ही अशोक वन में रखा। मैं ने

बाद में लंका पहुँचकर रावण वध के बाद सीता को शोधन मिस पुनः अग्नि प्रवेश करवाया। अग्नि प्रवेश के बाद अग्निदेव ने असली सीता को राम को अर्पित किया। उस समय की एक और घरना है। अग्नि प्रवेश के बाद दो सीताएँ बाहर आयीं। मैं ने असली सीता से प्रश्न किया कि यह दूसरी सीता कौन है? तब असली सीता ने कहा था कि 'ये वेदवती हैं। मेरे स्थान पर जाकर रावण से दिये गये दुःखों को सहन किया है। इन पर अनुग्रह कीजिएगा। विवाह विधि से इन्हें भी स्वीकार कीजिएगा।' इस पर मैं ने कहा अब मैं एकपत्नी व्रतधारी हूँ। यह आप भी जानती हैं। इस अवतार में मैं इन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। कलियुग में आप की इच्छा के अनुसार इन को स्वीकार करूँगा। इस के उपरांत ये ब्रह्मलोक में रहेंगी।' वे ही अब पद्मावती के रूप में अवतरित हुई हैं। मेरे वाक्य असत्य नहीं हो सकते। इन्हें अब मुझे विवाह करना ही है। यही पद्मावती का पूर्व वृत्तांत है।''

पद्मावती के पूर्व वृत्तांत को श्रीनिवास के मुँहतः सुनकर वकुलादेवी अत्यंत आनंदित हुईं। इतना ही नहीं आकाशराजा के महल में पद्मावती को देखने ओर कार्य संपन्न करने के लिए भी उद्यत हुईं। इस पर श्रीनिवास को असीम संतोष हुआ। वकुलमाता से लाये गये सभी पदार्थों को स्वीकार किया। अधीर मना श्रीनिवास स्थिर चित्त हो गये।

17) पद्मावती की सखियों से वकुलादेवी का मिलना

पहले वकुलामाता सुवर्णमुखी नदी के पास स्थित अगस्त्याश्रम पहुँची। वहाँ पार्वती माता के मंदिर में उन्होंने पद्मावती की सखियों को पाया। वकुलादेवी से परिचय के संदर्भ में ही उन्होंने कहा - ''हम

आकाशराजा के महल की कन्याएँ हैं।'' उत्सुकता सो वकुलामाता ने उनसे पद्मावती के बारे में पूछा तो उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया - ''कल ही हम सब पद्मावती देवी के साथ उपवन में गयी थीं। हम पुष्प चयन कर रही थीं। इतने में वहाँ पर एक अश्वारूढ़ युवक पहुँचा। वह किरात वेषधारी था। लेकिन मन्मथाकारी था। पद्मावती देवी को देखकर कुछ अवाच्य शब्द कहने लगा। पद्मावती देवी नाराज हो गयी। हमने उस पर पत्थर फेंककर भगा दिया। वह अश्व को छोडकर उत्तर की दिशा में भागा। उसके निकल जाने के बाद पद्मावती मूर्छित हो गयी। हम सब ने मिलकर उन्हें राजमंदिर लिया। इस के बाद गुरु बृहस्पति को सादर बुलवाया। गुरु ने पद्मावती की स्थिति देखकर कहा - 'हे राजन! सुनिए! पुष्पार्थ उपवन पहुँची यह कन्या एक पुरुष को देखकर डर गयी है। तदर्थ शान्ति पूजा करनी है। अगस्त्याश्रम में शिव जी का अभिषेक कराइएगा। इन को सुख मिलेगा और सब कुछ शुभ ही होगा।' राजा ने गुरु के आदेशानुसार शिव जी के अभिषेक की आज्ञा देकर हमारे साथ पूजा सामग्री भेजी है। यही हमारा यहाँ आने का कारण है। अब आप अपना परिचय दीजिएगा।''

इस पर वकुलामाता ने पद्मावती की सखियों से कहा - ''मैं हरि की सेविका हूँ। मुझे वकुलमालिका कहते हैं। मैं अब वेंकटेश्वर के आदेश से यहाँ आयी हूँ। मैं एक कार्यार्थ निकली हूँ। राणी धरणी देवी से मिलने पर ही यह कार्य सफल हो सकता है। मुझे आप लोगों को धरणी देवी से मिलाना होगा।''

शिवाभिषेक और पूजाएँ संपन्न हुईं। उसके बाद वकुलादेवी को साथ लेकर पद्मावती की सखियाँ राजमहल पहुँचीं।

18) श्रीनिवास का पुलिंद स्त्री के वेष में नारायणपुर में जाना

वकुलादेवी जब नारायणपुर पहुँची तब ही श्रीनिवास एक पुलिंद स्त्री का वेष धारण कर वहाँ पहुँचे। (पुलिंद स्त्री को तेलुगु में 'एरुकलसानि' कहते हैं। ये भील जाति की होंती हैं। भविष्य वाणियाँ कहती अपनी आजीविका अर्जित करती हैं।) श्रीनिवास के मन में वकुलामाता की कार्य साधना पर शायद शंका होगी। इसी लिए वे प्रलिंद स्त्री के रूप में धरणी देवी के पास पहुँचे। उस वेष में वह लंबोदरा थी। लंबे कानों में गुंजा की बाँलियाँ थीं। शंखों का हार पहनी थी। सात महीने के एक शिशु को पीठ पर बाँधी हुई थी। सिर पर विशेष आकार में बुनी बाँट की टोकरी तथा हाथ में एक दंडा। (आजकल भी पुलिंद स्त्रियाँ आन्ध्रप्रदेश में लग भग इसी रूप में भविष्यवाणी कहती फिरती मिलती हैं।) ''सोदे कहूँगी, सोदे कहूँगी' पुकारती हुई पुलिंद स्त्री के रूप में नारायणपुर में श्रीनिवास पहुँचे। ('सोदे' का अर्थ भविष्य कहना ही है)। वहाँ की वीधियों में विचरण करती हुई महल तक पहुँची। पुर की भद्र नारियों ने यह समाचार राणी धरणी देवी तक पहुँचाया। इस पर उन्होंने उस पुलिंद स्त्री को महल में बुला लिया। परन्तु उस पुलिंद स्त्री वेष धारी नारायण यह कहते हुए द्वार पर ही अड गये कि 'शायद मुझ पर मजाक करने राणी बुला रही होंगी। मैं अंतःपुर में नहीं आऊँगी।' इस पर स्वयं राणी ने आकर उसे अंदर बुलाया।

पुलिंद स्त्री अंदर गयी। राणी से उसने कहा - ''हे देवी! नारायण स्वामी मेरे पति हैं। पीठ पर जो बच्चा है उसी का है। पति की आज्ञा से ही मैं यहाँ पहुँची हूँ। मैं भूत, भविष्य और वर्तमानों को

सही रूप में बताने में समर्थ हूँ। मेरे वाक्य असत्य हो ही नहीं सकते। अगर असत्य हो तो मेरी जीभ कटवाकर नगर से बहिष्कृत करवा सकती हैं।'' इन बातों से राणी धरणी देवी प्रभावित हुई। समुचित स्थान पर उसे ले गयीं। उचित जगह पर उसे बिठाकर अपनी पुत्री पद्मावती के भविष्य बताने के लिए कहा। तब पुलिंद ने धरणी देवी के लिए प्रीतिकर शब्दों में कहा कि एक सुवर्ण सूप में चावल आदि आवश्यक पदार्थ रखकर उसके सामने रखें। राणी ने ऐसा ही किया। फिर अपने बच्चे के लिए खाना माँगा। उसके लिए विशेष मिष्टान्न मंगवाकर दिया। जब बच्चे ने नहीं खाया तो वह स्वयं खा गयी। तृप्त होकर एला - लवंग के तांबूल (पान) माँगा। वह भी मँगवाया गया। सब कुछ होने के बाद उसने भविष्य कथन आरंभ किया।

19) पुलिंद स्त्री का पद्मावती की अस्वस्थता का कारण बताना और भविष्य कहना

''कल के दिन पद्मावती जी ने घोडे पर सवार होकर आये एक सुंदर युवक को देखा है। उसे देखते ही उसकी ओर आकर्षित हो गयी हैं। वे काम ज्वर पीडित हैं। पद्मावती जी श्री वेंकटाधीश श्रीनिवास जी को अपने पति के रूप में चाहती हैं। कल अश्वारूढ़ हो कर जो व्यक्ति किरात वेष में आये थे वे ही श्रीनिवास जी हैं। वैकुण्ठवासी श्री महाविष्णु ही श्रीनिवास नाम से वेंकटाद्रि पर हैं। उन्हीं के घोडे को कल आपकी पुत्रिका की सखियों ने पत्थरों से मारा था। राजकुमारी पर गौरव रखकर वे चुपचाप वहाँ से चले गये हैं।त अन्यथा वे बहुत नाराज होते। उनके साथ आप विवाह बन्धन से आपकी बेटी को नहीं जोडेंगे तो तीन दिन में वे मर सकती

हैं। आप को मेरी बातों पर संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। बिना इच्छा प्रकट किये कैसे किया जाय? इस प्रकार की शंका अब अनावश्यक हैं। कुछ ही समय में पद्मावती को माँगने एक महिला यहाँ आनेवाली हैं। मेरी बातों पर विश्वास रखकर आप अपने पतिदेव को और उसके भाई तोंडमान को मनवाकर श्री पद्मावती का श्रीनिवास से विवाह निश्चित करवाइए। तभी पद्मावती जीवित रह सकती हैं।'' इतना कहकर पुलिंद स्त्री राणी से सम्मानित होकर वहाँ से चली गयी। पुलिंद स्त्री क्या स्वयं श्रीनिवास ही वहाँ से चले गये।

20) माता धरणी देवी से पद्मावती का अपने मन की बात कहना

पुलिंद स्त्री के निष्क्रमण के बाद राणी धरणी देवी पद्मावती के पास पहुँचीं। उनसे पूछा - ''बेटी! तुम्हें क्या चाहिए? निश्शंक होकर अपने मन की इच्छा मुझे बताओ। तुम्हारी कामना की पूर्ति अवश्य मैं कराऊँगी। अपनी माता से ही नहीं कहोगी तो और किसे बताओगी?'' इस पर पद्मावती ने यों उत्तर दिया - ''हे माँ! मेरे मन में असली बात जो थी उसे कहने में अब तक मैं संकोच कर रही थी। आपने ही आश्वासन के साथ पूछा है। अब मुझे धैर्य भी मिला है। आपसे अनुमति लेकर ही मैं सखियों के साथ कल पुष्प चयन के लिए उपवन में गयी थी। वहाँ मैं ने एक पुरुषोत्तम को देखा है। उन पर मेरा मन लग गया है। उनके बिना मैं जी नहीं सकती माँ! इसे आप सत्य मानिएगा। वे सर्वोत्तम और पुरुषोत्तम हैं। वे ही शंख-चक्र-गदा धर हैं। उन्हीं के कारण मुझे इस प्रकार की व्यथा सता रही है।''

राणी धरणी देवी ने पद्मावती को सांत्वना दी। आकाशराजा से पुलिन्द स्त्री द्वारा सुनायी गयी सारी बातें और पद्मावती का वृत्तांत प्रस्तावित किया।

21) पद्मावती की सखियों सहित वकुलादेवी का अन्तःपुर में आगमन

अगस्त्याश्रम में शिव जी की अभिषेक पूजाएँ संपन्न होने के बाद पद्मावती की सखियाँ समस्त पूजा सामग्री, प्रसाद और ब्राह्मणों के साथ नारायणपुर लौटीं। उनके साथ वकुलादेवी भी राणी के दर्शनार्थ आयीं। ब्राह्मणों को संभावनाएँ, पुरस्कार आदि देकर राणी ने पहले संतुष्ट किया। उन से पद्मावती को आशीर्वाद दिलाये। बाह्मणों के जाने के बाद पद्मावती द्वारा वकुलादेवी का परिचय कराया गया। उन्होंने अपनी माता से परिचय इस प्रकार दिया - ''हे माँ! ये वेंकटाचलवासिनी हैं। आप श्रीनिवास की सेवा में रहती हैं। आपका नाम वकुलादेवी हैं। ये आप से कुछ बात करने आयी हैं। अपना कार्य आप से ही निवेदित करना चाहती हैं।''

पुत्री से वकुलादेवी का परिचय पाकर धरणी देवी ने वकुलादेवी से उचित आसन पर आसीन होने के लिए कहा। तत्पश्चात् उन के बीच बातचीत यों चली। पहले राणी ने बातचीत आरंभ की -

''अब बताइए आपके आने का लक्ष्य क्या है?
आप का कार्य क्या है?''

''मैं आपकी कन्या को माँगने आयी हूँ'' - वकुलादेवी।

''हम भी वर की अपेक्षा रखनेवाले हैं। आप बताइए कि वर कौन हैं? उनका वास कहाँ हैं? उनके गोत्र-नाम आदि क्या हैं? वंश क्या है?''

''वर की माता देवकी हैं। पिता वसुदेव हैं। वंश
चंद्रवंश है। उनका नाम कृष्ण हैं। वशिष्ठ
गोत्रज हैं। जन्म नक्षत्र श्रवण है। वास
वेंकटाद्रि है। विद्यावान, धनवान, बलवान और
सदाचारसंपन्न हैं। इक्कीस वर्ष के युवक हैं।''

''आपकी बातों से मेरे में एक शंका जग रही है।
आपके अनुसार वह कुलीन है, भाग्यवान हैं,
बुद्धिमान है और युवक है तो अब तक उसका
विवाह नहीं होने का कारणे क्या है?''

''बचपन में उनका विवाह हो चुका है। पर
संतान नहीं है। इसी लिए वे द्वितीय विवाह
चाह रहा है। इस के अतिरिक्त उन में
कोई दोष नहीं है।''

राणी धरणी देवी संतुष्ट हुई। पुत्री भी उन्हें चाहती है। बस, वे आकाशराजा के पास जाकर उनसे कहने लगी - ''हे राजन! वकुलादेवी कन्यार्थ वेंकटाद्रि से आयी हैं। पुरोहितों को बुलाकर वधू-वरों के लिए अनुकूल पडनेवाले मुहूर्त का निर्णय कराइएगा। पद्मावती भी उन्हीं को चाहती है। उसका संकल्प श्रीनिवास को पाना है।'' पत्नी की बात सुनकर आकाशराजा ने कहा - ''हे राणी जी! आपने भी मेरे मन की बात कही है। मेरे पूर्व जन्म के फल स्वरूप ही सब चल रहा है। मेरे लिए ऐसे मंगलमय कार्य कराने का सौभाग्य मिल रहा है। अब मेरे सब पितर मुक्त होंगे। मुझे अत्यंत आनन्द हो रहा है।''

22) आकाशराजा का गुरु बृहस्पति और शुक महर्षि को बुलाकर विचार - विमर्श करना

अपनी पुत्री पद्मावती का विवाह श्रीनिवास से कराने का मन में निश्चय लेकर आकाशराजा ने गुरु बृहस्पति को सादर आमंत्रित करने अपने पुत्र को ही भेजा। गुरु बृहस्पति आये। उनसे आकाशराजा ने सारा वृत्तांत कह कर प्रार्थना की - ''अगर आपकी आज्ञा हो जाय तो मैं अपनी पुत्री का विवाह श्रीनिवास से करूँगा। कन्या को माँगने एक साध्वी माता आयी है। आपकी अनुमति की अपेक्षा है।''

इस पर गुरु बृहस्पति ने कहा - ''हे राजा! मैं भूलोक में यदा कदा आया करता हूँ। सदा का वासी तो नहीं हूँ। श्रीनिवास का चरित मुझे समग्र रूप से ज्ञात नहीं है। शुक महामुनि भूलोक में रहनेवाले हैं। उनको श्रीनिवास का वृत्तांत पूरा मालूम होगा। वे ही सही सलाह दे सकेंगे। उनसे परामर्श करें तो अच्छा होगा।

बृहस्पति के मन की बात पहचान कर राजा ने शुक महामुनि को सादर ले आने अपने सहोदर तोंडमान को भेजा। शीर्घ शुक महर्षि के पास जाकर उसने निवेदित किया - ''हे महर्षि जी! हमारे सहोदर आकाशराजा के द्वारा मैं आपके पास भेजा गया हूँ। हमारी कन्या पद्मावती विवाह योग्या हो गयी है। राजा श्रीनिवास के साथ उनका विवाह कराना चाहते हैं। युक्तायुक्त विचार - विमर्श आपसे करना चाहते हैं। गुरु बृहस्पति जी को भी बुलाया गया है। वे पधारे हुए हैं। आपको सादर ले आने के लिए मुझे राजा ने भेजा है। आप आइए और मंगल कार्य संपन्न कराइए।'' तोण्डमान से वार्ता पाकर

शुक महर्षि आनंदित हुए। तुरन्त तैयार होकर उनके साथ नारायणपुर के लिए निकले।

आकाशराजा को शुक महर्षि के आगमन का समाचार मिला तो पुर के द्वार पर जाकर उनका स्वागत किया। अर्घ्य - पाद्यादि से उनका सत्कार किया। तदुपरांत रजाने शुक जी से निवेदित किया - ''हे मुनीन्द्र! श्रीनिवास के साथ पद्मावती का विवाह हमारा अभि मत है। मेरा संकल्प ठीक है और आप की राय भी यही है तो अवश्य श्रीनिवास के साथ पुत्री पद्मावती का कल्याण होगा।'' इस पर शुक महर्षि ने कहा - ''हे राजन्! आपका संकल्प विशिष्ट है। कन्यादान के विषय में शंका - संदेह के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। आप भी धन्य होंगे। आपका वंश पावन होगा। आपके पितर स्वर्ग में अपना स्थान पायेंगे। पूर्व जन्म पुण्य फल के रूप में साक्षात् श्रीनिवास आपके जामाता हो रहे हैं। आपसे बढ़कर पुण्यवान और भाग्यवान पृथ्वी पर और कोई नहीं हैं। इस संबन्ध में अब देरी नहीं होनी चाहिए। कंद मूल भक्षी होकर सर्वस्व त्यागकर दीर्घ कालीन तपस्या से भी हम श्रीनिवास को प्रत्यक्षतः देख नहीं पा रहे हैं। ऐसे श्रीनिवास आपके जामाता बन रहे हैं। उन्हें प्रत्यक्ष पाकर हम भी धन्य होंगे। हमारे जन्म - जन्मों की कामना भी पूरी हो रही है। हमारे लिए यह अत्यंत आनन्ददायक ही है।''

23) पद्मावती - श्रीनिवास के विवाह - प्रस्ताव की आकाशराजा

आकाशराजा ने गुरु बृहस्पति और शुक महर्षि दोनों की सहमति पाकर अपने को कृतार्थ माना। ग्रह, नक्षत्र आदि के योग -

विचार की उन से प्रार्थना की। उन्होंने यह भी कहा कि अपना गोत्र अत्रिगोत्र है और पद्मावती का जन्म नक्षत्र मृगशिरा है। वकुलामाता ने श्रीनिवास का गोत्र वशिष्ठ गोत्र और नक्षत्र श्रवण बताया है। सब पर विमर्श कर नाड़ी - कूट, योनि - कूट, नक्षत्र - कूट, ग्रह - कूट सभी को अनुकूल पाकर कन्यादान के लिए कहा गया। तब आकाशराजा ने अपने बन्धु जनों को बुलाकर सब के सामने घोषित किया कि ''पद्मावती का विवाह श्रीनिवास से निश्चय हुआ है। मैं कन्यादान करूँगा। यही मेरी स्वीकृति और प्रतिज्ञा है।''

24) आकाशराजा का श्रीनिवास को शुभ-पत्र भेजना

इसके उपरान्त आकाशराजा ने गुरु बृहस्पति से आगे के करणीय के संबन्ध में पूछा तो उन्होंने श्रीनिवास के पास शुभ पत्र भिजवाने की सलाह दी। वह किस प्रकार का हो और उस में क्या प्रस्तावित किया जाय आदि के संबन्ध में आदेश की विनती की। तब गुरु ने इस प्रकार का पत्र लिखवाया - ''वेंकटाचलवासी श्रीनिवास को आकाशराजा के आशीर्वाद! आपके आश्रय की कामना लेकर संप्रेषित समाचार है। यहाँ हम और हमारे बन्धु जन आपके अनुग्रह से सकुशल हैं। आप सब के कुशल - मंगल यथासंभव स्वल्प कालावधि के बीच ही पत्रों के माध्यम से जानने के हम इच्छुक हैं। यह पत्र चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन लिखा जा रहा है। हमारी पुत्री पद्मावती का विवाह आप से संपन्न करना ही हम सब लोगों को मंतव्य और अभिमत है। यही पद्मावती की भी मनोकामना है। वैशाख शुक्ल दशमी भृगुवार का दिन शुभ दिन है। मुहूर्त दिन है। यह गुरुओं द्वारा निर्देशित भी है। उस दिन पर सकुटुम्ब और सपरिवार समेत

हमारे यहाँ पधार कर पद्मावती का पाणिग्रहण कर हमें अनुग्रहीत करें। इस से अधिक मैं और क्या निर्देश कर सकता हूँ। आप शुक महर्षि के वचनों का अनुसरण कीजिएगा।''

पत्र शुक महर्षि के हाथों में रखकर एक कोस दूरी तक उनके साथ चलकर आकाशराजा ने उन्हें श्रीनिवास के पास भेजा। कार्य की साधना की प्रार्थना को मन में रखकर वे आगे बढ़े।

शुक महर्षि मध्याह्न के समय तक वेंकटाद्रि पहुँचे। उनको देखकर श्रीनिवास ने भी आदर के साथ स्वागत किया। पूछा - ''क्या मेरे कार्य का शुभ समाचार आप लाये हैं?'' शुक जी की ''हाँ'' ने श्रीनिवास को अमित आनन्द दिया। शुक जी से वे गले मिले। शुक जी ने संदेश भरा शुभ पत्र दिया। पढ़कर श्रीनिवास ने भी प्रत्युत्तर लिख भेजा - ''राजाधिराज सुधर्मातनय आकाशराजा को शत कोटि नमस्कार! आप का शुभ लेख मिला। अत्यंत आनंद हुआ। आप की इच्छा के अनुरूप वैशख शुद्ध दशमी भृगुवार के शुभ दिवस पर मैं आपकी पुत्री का पाणिग्रहण अवश्य करूँगा। पहले सागर ने अपनी कन्या का दान कर जिस प्रकार यश की प्राप्ति की थी उसी प्रकार की कीर्ति आप को भी मिलेगी। मुझे कन्यादान देकर आप को अपने पूर्व और उत्तर वंशों के उद्धारक होने का यश प्राप्त होगा। आप अच्छे ज्ञाता हैं। इस से अधिक लिखने की आवश्यकता मुझे दिखाई नहीं दे रही है।''

हरि संदर्शन का सुख पाकर शुक महर्षि आकाशराजा की नगरी में पहुँचे। शुक के द्वारा शीघ्र ही प्रत्युत्तर पाकर आकाशराजा के संतोष की सीमाएँ नहीं रहीं।

25) श्रीनिवास से वकुलादेवी का पद्मावतीपरिणय वृत्तांत कथन

शुक महर्षि के आगमन के पश्चात वकुला माता को देखकर श्रीनिवास ने उनसे आकाशराजा की नगरी से वापसी में देरी का कारण पूछा - ''हे माता! आकाशराजा के यहाँ क्या हुआ? इतने दिन आप वहाँ क्यों रहीं? सविवरण बताओ न!'' तब वकुलादेवी का उत्तर था - ''हे श्रीनिवास! बहु प्रयास से आपका कार्य सिद्ध हुआ है। दैव वश नारायणाश्रम से धरणी देवी आयीं। वे अपनी कन्या को आपको देने के लिए तैयार हैं। कन्या भी आपके प्रति अनुराग रखती हैं। राजा ने भी सब ओर से सहमति पाकर विवाह का निश्चय किया है। सब लोगों के सामने भी उन्होंने यह प्रकट किया है।'' वकुलामाता से समाचार पाकर श्रीनिवास संतुष्ट हुए।

(भविष्योत्तर पुराण - नवम् अध्याय)

26) श्रीनिवास की आज्ञा से ब्रह्मादि देवताओं को आमंत्रित करने शेष और शेषाशन का जाना

श्रीनिवास ने सोचा कि बहु बन्धु - परिवार युक्त आकाशराजा के यहाँ विवाह के लिए परिवार रहित जाना उपयुक्त नहीं होगा। इसी लिए श्रीनिवास ने चतुर्मुख ब्रह्मा और रुद्र को बन्धु मित्र सहित विवाह में पधारने के निमंत्रण पत्र शेष और गरुड़ के हाथों भेजे। गरुड़ सत्य लोक गये। ब्रह्म को निमंत्रण पत्र समर्पित किया। ब्रह्मा ने पत्र में यह लिखा पाया - ''हे चिरंजीवी पुत्र! श्रीनिवास के मंगलाशासन! कलि युग का आरंभ हुआ है। इसी समय आकाशराजा अपनी पुत्री को मुझे कन्यादान में अर्पित करना चाह रहे हैं। उस

मंगल कार्य में तुम सपरिवार आना। साथ साथ लोकपालक, नाग, गंधर्व आदि को अवश्य निमंत्रित कर ले आना। कल्याणोत्सव का आनन्द लेना।''

पत्रिका को देखकर ब्रह्मा को अमित आनंद हुआ। विवाह महोत्सव में भाग लेने के लिए अपने द्वारपालकों द्वारा समस्त परिवार को आवश्यक रीति से सूचनाएँ दीं। भेरी - दुदुंभी नादों के साथ चलने की आज्ञाएँ भी दीं।

27) चतुर्मुख का शेषाचल पर आगमन

ब्रह्मा सालंकृत हो सरस्वती, सावित्री और गायत्री समेत हंस वाहनारूढ़ हो सपरिवार शेषाचल के लिए निकले। चारों द्वारा पहले उन्होंने श्रीनिवास को सूचना अवश्य भिजवाई। पुत्र स्नेह से श्रीनिवास भी गरुड़ पर असीन हो कर ब्रह्मा के स्वागत के लिए निकले। दोनों मिले। परस्पर आलिंगन बद्ध हुए। तब श्रीनिवास ने ब्रह्मा से अपने भूलोक आगमन का वृत्तांत बताया। द्वापरान्त में वैकुण्ठ में शेष तल्प पर आसीन हरि को भृगु का चरणाघात, लक्ष्मी का रूठ कर कोल्हापुर जाना, उस से व्यथित हो कर श्रीनिवास का वैकुण्ठ छोडकर वेंकटाद्रि पर आना, वल्मीक वास, चोल राजा के भृत्य और गोपालक का कुठाराघात, वकुलामाता के संरक्षण में रहना आदि सभी वृत्तांत ब्रह्मा को सविवरण बताये। अन्त में मृगयासक्त हो कर पद्मतीर्थ के पास उपवन में आकाशराजा की पुत्री पद्मावती को देखना और उन पर आसक्त होना आदि भी पुत्र को समझाये गये। वकुलामाता के प्रयत्न वृत्तांत को भी कह कर पुत्र के आगमन पर संतोष व्यक्त किया।

28) रुद्र आदि का शेषाद्रि पर आगमन

पार्वती - षण्मुख समेत शिव जी भी अपने प्रमथ गणों के साथ वेंकटाद्रि पर पधारे। उनका सादर स्वागत हुआ। श्रीनिवास ने नीलकण्ठ से प्रेमालिंगन किया और उचित आसन पर उनको बिठाया। उसी समय कुबेर अपने परिवार सहित वहाँ आये। स्वाहा तथा स्वधा देवियों सहित अग्निदेव भी आये। इन्द्र, वरुण, सूर्य, चन्द्र आदि सभी देवता समूह एक के बाद एक के वेंकटाद्रि पर आगमन से उत्सव का वातावरण विस्तृत हुआ। कश्यप, भरद्वाज, वामदेव, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, परशुराम, पुलस्त्य, दधीचि, शुनःशेप आदि ऋषि समूह भी वेंकटाद्रि पर सानंद पहुँचे। श्रीनिवास ने सभी का यथोचित सम्मान किया और उचित आसनों पर आसीन कराया।

29) विश्वकर्मा द्वारा विवाहनगरी का निर्माण

तब उपयुक्त अवसर पाकर इन्द्र से श्रीनिवास ने निवेदन किया - ''हे महेन्द्र! विश्वकर्मा से विवाह योग्य नगरी का निर्माण कराइएगा।'' इन्द्र ने सानंद आदेश स्वीकार कर विश्वकर्मा को समुचित आज्ञाएँ दी। आदेश पाकर विश्वकर्मा ने पचास योजन विशाल, तीन योजन के वृत्त में एक आकर्षक, मनोहर और सुन्दर नगरी का निर्माण किया। उसी के समानांतर में श्रीनिवास की आज्ञा से इन्द्र ने मय से एक और नगरी का निर्माण आकाशराजपुरी में करवाया। वह दिव्य विवाह मण्डप से अभिमण्डित वेदिका अत्यंत रमणीय बनी। स्नानादि के लिए उपयुक्त वापी, तडाग और कूपों का भी निर्माण किया गया।

30) श्रीनिवास द्वारा देवताओं और ऋषियों से विवाह - कार्य निर्वहण का निवेदन

उस समय श्रीनिवास ने देवताओं को देखकर कहा - ''आकाशराजा की पद्मावती नामक एक पुत्री है। उससे पाणिग्रहण की मेरी इच्छा है। आप सब लोग इस संबन्ध को स्वीकार करेंगे तो मैं उन्हें स्वीकार करूँगा।'' नारायण की इच्छा सुनकर ब्रह्मादि देवता गण बोले - ''हम सब आपके भक्त और दास हैं। आपका प्रसाद समझकर ही हम लोग आपके विवाह वैभव से आनंद पाने आये हैं। यह हमारा सौभाग्य ही है।''

तत्पश्चात श्रीनिवास ने सभी को यथासंभव योग्य काम सौंपे। आये हुए देवताओं का सत्कार भार शंकर को दिया। सभी को आह्वानित करने कुमारस्वामी को नियुक्त किया गया। तांबूलादि द्रव्य आहूतों को अर्पित करने के लिए कामदेव नियुक्त हुए। हव्य वाहन को भोजन की व्यवस्था तथा जल की आवश्यकताओं के लिए वरुण को निर्देशित किया गया। सुगन्ध द्रव्यों का वितरण वायुदेव को सुपुर्द किया गया। धन - द्रव्य आदि को निभाने का कर्तव्य कुबेर का ही रहा। दीपमालाओं की योजना निशाकर के होथों रही। भाण्ड शुद्धि वस्तुओं के दायित्व में रही। दुष्ट शक्तियों पर दृष्टि रखने का कर्य यमधर्मराज के पास ही रहा। इस प्रकार कार्य - निर्वहण भार उपयुक्तों को सौंप कर श्रीनिवास आश्वस्त हुए। सभी ने सौपे — कार्य को आनंद के साथ स्वीकारा।

31) करवीरपुर में (कोल्हापुर) बसी लक्ष्मी को विवाह महोत्सव का निमंत्रण

अंततःचतुर्मुख ब्रह्मा ने श्रीनिवास के पास पहुँचकर कहा - ''हे श्रीनिवास! विवाह पूर्व समस्त कार्यक्रमों की तैयारी तो हो रही है। आप जानते हैं कि सब से पहले पुण्याहवचन, इष्टदेवता पूजन, कुल देवता की प्रतिष्ठा आदि पूर्व कार्य - कलाप होने हैं। सब से पहले आप मंगल के लिए तैयार हो जाइएगा।'' तब वेंकटपति करवीरपुरवासिनी लक्ष्मीदेवी का स्मरण करते हुए चिंतित हुए। ब्रह्मा ने कहा - ''हे पुत्र! रमा के बिना शोभा नहीं दिखाई दे रही है। प्रलय समय जब अकेले ही क्षीर सागर पर वट पत्रशायी था तब भी लक्ष्मी साथ रही हैं। उनके बिना मैं कैसे रह सकता हूँ? उनकी अनुपस्थिति में विवाह कैसे संपन्न माना जायेगा?'' श्रीनिवास की व्यथा समझ कर पितामह ब्रह्मा बोले - ''हे पिताश्री! यही आपकी भावना है तो क्यों आपने पहले ही नहीं कहा? अब क्यों प्राकृत जन समान चिंतित हो रहे हैं? बताइए क्या कह कर उन्हें यहाँ लाया जाय? वे मेरी बातों पर कैसे विश्वास करेंगी।

इस पर तिरुमलवास ने सूर्यदेव से कहा - ''हे रवि! हम तुम्हें एक उपाय बताएँगे। तुम जाकर उनसे कि 'आप के विरह से श्रीनिवास अचेतनावस्था में हैं। आप को देखने की व्यग्रता उनमें हैं। अगर आप नहीं आयेंगी तो उनका जीना संदेहास्पद है। अगर ये बाते तुम कहोगे तो वे अवश्य तुम्हारे साथ तुरंत यहाँ आयेंगी।'' श्रीनिवास के मुँह से ऐसी बात सुनकर सूर्यदेव मुस्कुराकर बोले - ''प्रभु! लक्ष्मी

देवी सर्वज्ञा हैं। हर व्यक्ति के हृदय की बात को पहले ही पहचान लेती हैं। इतना ही नहीं हमेशा स्वस्थ रहनेवाले आप के बारे में मैं कैसे कह सकता हूँ कि आप अस्वस्थ हैं?''

इस पर श्रीनिवास ने कहा - ''लक्ष्मी देवी भी मेरी माया से सम्मोहिता है। वे तुम्हारी बातों पर अवश्य विश्वास करेंगी। तुम तुरन्त जाओ। उन्हें यहाँ लाना तुम्हारा कर्तव्य है।'' श्रीनिवास ने अपनी बात कही।

सूर्यदेव करवीरपुर में लक्ष्मी देवी से मिले। बात सुनाकर वे तुरन्त लक्ष्मी देवी को अपने रथपर बिठाकर वेंकटाद्रि लाये। सूर्यदेव को जाने का संकेत दिया गया श्रीनिवास द्वारा। लक्ष्मी देवी के सामने जाने के लिए अपने आप को अस्वस्थ दिखाने के लिए शंकर की भुजा पर एक हाथ तथा ब्रह्मा की भुजा पर एक हाथ रखकर धीरे धीरे उनकी ओर चलने लगे। ऐसे श्रीनिवास को देखकर कमला ने उनके पैटों पर चमेली के फूलों को डालकर उनको अपनी बाहुओं में लिया। रमा के परिष्वंग से श्रीनिवास स्वस्थ हुए। कुशल - मंगल विचार के बाद लक्ष्मी देवी ने श्रीनिवास से कहा - ''मैं स्वयं आपकी माया से मोहित हो गयी थी। आप की माया से ब्रह्मा, रुद्रादि देवता ही अपने आप को बचा नहीं सकते हैं तो उनके सामने मैं क्या हूँ। अस्तु, अब बताइए मुझे यहाँ बुलाने का कारण क्या है?'' लक्ष्मी देवी के पूछने पर श्रीनिवास ने समझाया - ''हे देवी! रामावतार में आपने मुझ से एक बात कही थीं। कुछ स्मरण कीजिए। वेदवती से विवाह का समय अब आसन्न हुआ है। कलियुग में आप के स्थान पर उनसे विवाह करना चाहता हूँ। आपका अभिमत क्या है?''

रमा ने तब पूर्व युग की बातों को स्मरण किया। हँसती हुई बोली - ''उनसे विवाह सूत्र में बंध कर मेरी इच्छा को सफल बनाइए। यही मेरी अब प्रार्थना है। श्रीनिवास ने आनंद से स्वीकृति दी।

(भविष्योत्तरपुराण - दशम अध्याय)

32) लक्ष्मी द्वारा श्रीनिवास का मंगल स्नान कराना

लक्ष्मी जी के आगमन से वेंकटाद्रि का वातावरण ही बदल गया। श्रीनिवास ने चतुर्मुख को आगे के कार्यक्रम आरंभ करने का आदेश दिया। गरुड़ आदि से मंगल स्नान के लिए आवश्यक व्यवस्था करने के लिए कहा। वरुण और वायुदेव ने सुगन्ध जल युक्त पात्रों को तैयार रखा। पार्वती, सरस्वती, सावित्री आदि सुमंगली स्त्रियों ने मंगल गीत गाये। तब सजल नेत्रों से श्रीनिवास ने उनसे कहा - ''मेरे लिए माता और पिता नहीं हैं। भाई - बन्धु नहीं हैं। ऐसे परिवार रहित लोगों का जीवन व्यर्थ ही होता है न?'' तब ब्रह्मा ने समाधान वत कहा - ''हे स्वामी! आप प्राकृत जनों के समान व्यथित क्यों हो रहे हैं? आप साक्षात् परम पुरुष हैं। आप की अर्धांगी स्वयं जगन्माता ही हैं। समस्त जीव कोटि आप का परिवार है। आप लोक कुटुम्बी हैं। सांत्वना भटे सत्य वचनों से स्वामी प्रकृतिस्थ हुए। रमा मंगल स्नान कराने सामने आकर बोलीं - ''हे वेंकटेश! आप का अभिप्राय संकेत मात्र से स्पष्ट हो गया है। अन्य विचार छोडकर आगे आइए। तैलाभ्यंगन स्नान कराऊँगी। इस मंगल आसन पर उपविष्ट हो जाइए।''

श्रीनिवास ने संतोष व्यक्त किया। पीढ़ा पर बैठे। सिन्धुराज पुत्री ने श्रीनिवास को तैल से अभ्यक्त किया। सुगन्ध पदार्थों, कस्तूरी,

हरिद्राचूर्ण आदि से लेपित कर मंगल स्नान कराया। शुभ्र जल स्नान के पश्चात् शुभ्र वस्त्र से शरीर को पोंछा गया। पार्वती माता ने सुगन्ध छूप दिया। सरस्वती ने छत्र, गांगाने पादुकाएँ आदि अर्पित किये। रति और शची देवियों ने चामर डुलाये।

श्रीनिवास विवाह के लिए सिंगारों के साथ अलंकृत हुए। ब्रह्मा, सुर, इन्द्र, दिक्पालक, वशिष्ठ, कश्यप आदि मुनि गण, योगी सब ने इस अवसर पर अपने अपने कर्तव्य निभाये। तुम्बुर आदि गायकों और रंभा आदि नर्तकियों के अपनी अपनी कलाएँ प्रदर्शित की। इस भव्य और दिव्य कोलाहल के बीच रमा से अलंकृत श्रीनिवास ने विधिवत संकल्प लेकर पुण्याहकार्य संपन्न किये।

33) विवाह संदर्भ में कुलदेवता के अर्चनार्थ शमीवृक्ष का प्रतिष्ठापन

शास्त्रोक्त विधि - विधियों के निर्वाह के पश्चात् वेंकटेश से पूछा गया कि आप की कुल देवता कौन हैं? इस पर श्रीनिवास ने अपने कुल देवता के रूप में शमी वृक्ष को बताया। वह वृक्ष कुमार धारा तीर्थ के पास था। श्रीनिवास वहाँ पहुँचे। वृक्ष की पूजा की। तत्पश्चात् एक छोटी सी डली को साथ लेकर आये। विवाह कार्य में उसकी पूजा भी होती है। उस डली को नारद मुनि की सूचना के अनुसार वराह स्वामी की अनुमति से उनके मंदिर के पास स्थापित किया गया।

34) विवाहार्थ कुबेर से धन का ऋण लेना

सब मंगल कार्यों के संपन्न होने के उपरांत श्रीनिवास को सपरिवार आकाशराज नगरी में जाना है। ब्रह्मा ने कहा - ''पुण्याह

कार्य के पश्चात् बिन भोजन, उपवास के साथ हम सब का नारायण पुर जाना उचित नहीं है। मुनि गण, बालक, वृद्ध और अन्य लोग भौजन की प्रतीक्षा में हैं।'' तब श्रीनिवास ने ब्रह्मा से कहा - ''मैं तो रिक्त हूँ। मेरे पास धनादि नहीं हैं। मैं कैसे सब को प्रीति-भेज की व्यवस्था कर सकता हूँ।'' ब्रह्मा तो निरुत्तर हो गये। परन्तु शिव जी ने कहा - ''विवाह प्रयत्नों के आरंभ करने के बाद अन्त तक उचित व्यवस्थांओं का विधान करना ही समीचीन होता है। शुभ कार्यों में भण्डार को भी पूरी तैयारी के साथ व्यवस्थित करना पड़ता है। धन नहीं है तो ऋण लेकर ही सही कार्य को ठीक निभाना होता है।'' शंकर की बातों से प्रभावित होकर श्रीनिवास ने कहा - ''आपका कहना उचित ही है। परन्तु लगता है कि मेरे विवाह के लिए बुहुत सा धन चाहिए। इतना धन ऋण के रूप में देनेवाला अब कौन हैं? पुरुषार्थ कर्म अब करना ही है।'' इतना कह कर श्रीनिवास ने मित्र कुबेर को पास बुलाकर प्रार्थना की - ''हे मित्र कुबेर! आप से अब मेरा कुछ काम पडा है। मेरे साथ आना।'' तब श्रीनिवास ब्रह्मा और शिव को भी साथ लेकर कुबेर सहित पुष्करिणी तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने मन की बात कही - ''कलियुग में मेरे विवाह के लिए आप को धन देना है। अवतारों के समय मैं संपत्ति साथ लेकर नहीं आता हूँ। भूलोक में धन का अर्जन कर नही मैं पैसा वापस ले जा सकता हूँ। मुझे युग और समय का अनुसरण करते हुए अवतार कार्य निभाना है। इसी लिए युग देश, काल और वय के अनुसार चलने के लिए आप मुझे धन दीजिए। मैं भी युग की रीति का अनुपालन करता हुआ ऋण चुकाऊँगा। लोक रीति के अनुसार धनवान अपने ऋणग्रही

से जिस प्रकार पत्र लिखवाता है उसी प्रकार का पत्र मैं भी दूँगा।'' श्रीनिवास की बात कुबेर ने स्वीकार की। ऋण-पत्र इस प्रकार बना-

''कलियुग के विलंबि नाम संवत्सर वैशख शुक्ल सप्तमी के दिन कुबेर से श्रीनिवास ने अपने विवाहार्थ चौदह लाख राम मुद्रांकित सुवर्ण निष्कों को ऋण के रूप में ग्रहण किया है। विवाह वर्ष से आरंभ कर एक सहस्त्र वर्षों के भीतर ऋण चुकाने का वादा भी किया है। इस के दो साक्षी हैं चतुर्मुख और शंकर। तीसरा साक्षी अश्वत्थ वृक्ष है।'' इस प्रकार का ध्रुव ऋण-पत्र देकर श्रीनिवास ने कुबेर से ऋण पाया।

35) वेंकटाद्रि पर श्रीनिवास का प्रीति-भोज देना

कुबेर से प्राप्त धन को पुनः उन्हीं के अधीन कर श्रीनिवास ने विवाह महोत्सव में आवश्यकता के अनुसार खर्च करने का आदेश भी दिया। प्रथमतः वेंकटाद्रि पर आगत अथितियों के लिए भोजन की व्यवस्था की गयी। उसके बाद विवाह के लिए आवश्यक वस्त्र, कर्पूर आदि सुगंन्ध द्रव्य, बहु मूल्य आभरण, मंगल सूत्र आदि की व्यवस्था के लिए भी आदेश दिये गये। भोजन पकाने के पात्र संजोना और सामग्री की व्यवस्था की बात उठी तो श्रीनिवास ने कहा - ''मेरे पास कोई भाजन - नहीं हैं। फिर भी एक मार्ग है। मेरे लिए पुष्करिणी ही अन्न पात्र है। पापनाशन तीर्थ ही सूप पात्र है। आकाश गंगा पायस पात्र है। देव तीर्थ शाक भाजन है। तुंबुरु तीर्थ चित्रान्न पात्र है। कुमार तीर्थ भक्षपात्र है। पांडव तीर्थ रसम् पात्र है। अन्य तीर्थ विविध व्यजन पात्र होंगे। यथा रीति इनका उपयोग कीजिएगा।'' अग्नि देव ने स्वामी से आज्ञा पाकर सब तैयार करवाया। देव, द्विज, मुनि, ऋषि आदि सभी को प्रीति - भेज की व्यवस्था हो गयी। तब श्रीनिवास ने

ब्रह्मा से वहा कि इस का प्रथम निवेदन अहोबल के नृसिंह स्वामी को हो। तत्पश्चात् सब को भोजन दिया जाय। इस के बाद सब से निवेदन किया गया - ''यह मेरा स्वल्प आतिथ्य है। कृपाभाव से इसे स्वीकार कीजिएगा और मुझे कृतार्थ बनाइए।'' इस पर सब ने मुक्त कण्ठ से कहा - ''हे श्रीनिवास! आपका दिया हुआ यह भोजन अमृत तुल्य है। हम आपसे सप्रीति भोजन पाकर कृतार्थ हो गये हैं। भोजन के बाद सब को सदक्षिणा तांबूल दिया गया। सब अतिथियों के भोजन के बाद श्रीनिवास ने भोजन किया। रात को सब ने वही विश्राम किया।

36) श्रीनिवास का सपरिवार आकाशराजापुर के लिए प्रस्थान

अगले दिन प्रातःकाल को ही श्रीनिवास ने गरुड़ को बुलाया और कहा कि वह जाकर ब्रह्मा से कहे, नारायणपुर जाने की तैयारियों का निरीक्षण करें। ब्रह्मा ने प्रयाण के लिए आवश्यक सभी बातों पर दृष्टि रखी और समस्त परिवार को सन्नद्ध किया। तब श्रीनिवास के पास जाकर ब्रह्मा ने कहा कि ''हे भगवन! अब आप गरुड़ पर अधिष्ठित होकर निकल सकते हैं। सब लोग तैयार हैं।'' बारात की अगुवानी ब्रह्मा ने की। दक्षिण पार्श्व में रुद्र और वाम पार्श्व में वायु थे। उनके पीछे-पीछे कुमार स्वामी चले। रमा स्वर्ण रथ पर चढ़कर चली। वकुलादेवी ने भी उचित यान पर उनका अनुसरण किया। शेष जी श्रीनिवास के साथ श्वेत छत्रधारी हो चले। विष्वक्सेन आदि भगवान के रक्षा कवच में बरात नारायणपुर की ओर चली। मार्ग देवताओं और ऋषियों से भर कर नेत्रानंद कर रहा। शेषाचल से नारायणपुर तक का मार्ग बारातियों से शोभित था। पद्मतीर्थ से होते हुए बाराती आगे निकले।

37) श्रीशुक का श्रीनिवास को आतिथ्य देना

बारात पद्मतीर्थ पहुँची तो श्रीशुक ने उसका अपने आश्रम में स्वागत किया। श्रीनिवास के सामने प्रणमित हो कर श्रीशुक ने कहा - ''हे देवाधिदेव! इतने वर्षों की मेरी तपस्या का फल अब मिल गया है। ब्रह्मा-रुद्रादियों को भी अगम्य आप आज मेरे सामने प्रत्यक्ष गोचर हो रहे हैं। वह भी आप रमा समेत होंकर। लोक पालक, दिकपालक, शेष सब आप के साथ हैं। मुझे इन प्राकृत नेत्रों से आपका दर्शन करने का भाग्य मिला है। मेरा आतिथ्य स्वीकारकर मुझे अनुगृहीत कीजिएगा।'' शुक जी की बातें सुनकर श्रीनिवास ने उनसे कहा - ''आप ब्रह्मचारी हैं। इससे अधिक तपस्या रत एवं विरागी भी हैं। हम परिवार से जुडे कुटुम्बी हैं। अब नारायणपुर जा रहे हैं। वहीं भोजन करेंगे।''

तब शुक मुनि ने कहा - ''हे भगवन्! मैं तो अपने को अकिंचन मानता हूँ। परन्तु आप अगर मेरा आतिथ्य स्वीकार करेंगे तो मैं मानता हूँ कि समस्त लोक ने भोजन किया। बिना आगे पीछे सोचे आप मेरी विनती स्वीकार कीजिएगा।'' वकुलादेवी ने भी श्रीशुक की कामना को संतुष्ट करने के लिए ही कहा। तब श्रीनिवास ने भी शुक जी के आश्रम में जाकर उनका आतिथ्य स्वीकार किया। उनकी भक्ति-प्रपत्तियों से आनंदित होकर आगे बढे। धीरे-धीरे आकाशराजपुर पहुँचे।

38) आकाशराजा द्वारा श्रीनिवास का स्वागत

उस दिन सायं समय पर आकाशराजा पद्मावती को अलंकृत हाथी पर बिठाकर श्रीनिवास के स्वागत के लिए पुरोहितों सहित

पुरद्वार पर पहुँचे। राजा के भाई तोंडमान भी उनके साथ रहे। श्रीनिवास का स्वागत कर राजा ने कहा - ''मैं अब धन्य हो गया हूँ। कृतकृत्य हुआ। स्वर्ग का मार्ग मेरे लिए सुलभ हो गया।'' फिर नूतन वस्त्र, मंगलाभरण, गन्ध और पुष्प मालाओं से वर पूजा संपन्न की। पद्मावती और श्रीनिवास दोनों ने एक दूसरे को देखा। तत्पश्चात् अलंकृत वीथियों में सुवाद्य नादों के बीच वर के लिए निर्दिष्ट भवन में वर को पहुँचाया गया। मंगलादिक कार्य संपन्न किये गये। तदनन्तर तोंडमान ने सभी को भोजनादि की व्यवस्था की। भोजन के बाद श्रीनिवास ने बन्धु जनों के साथ विश्राम लिया।

39) विवाहार्थ आह्वानित करने आकाशराजा का विश्राम मंदिर जाना

विवाह के दिन सुप्रभात समय में श्रीनिवास ने वशिष्ठ जी से कहा - ''हे गुरुवर! मैं, लक्ष्मी, ब्रह्मा और माता वकुलादेवी, पुरोहित हम पाँच आज के दिन भोजन नहीं करेंगी। आकाशराजा के यहाँ भी राजा, राणी, कन्या, राजा का भाई और उनके पुरोहित भोजन नहीं लेंगे। आगे के कार्यक्रम आप की देखरेख में चलें। फिर उन्होंने कुबेर द्वारा आकाशराजा को यह संदेश भिजवाया कि - ''हे राजन्! आपके भवन में आज रात का विवाह मुहूर्त है। विवाहोपरांत भोजन की व्यवस्था कठिन होगी। इस लिए विवाह पूर्व ही ब्राह्मणों को भोजन करना ठीक होगा। आगे सब की व्यवस्था आप के हाथ में ही है।'' वार्ता पाकर आकाशराजा ने उपयुक्त तांबूलादि से संतुष्ट किया।

उपयुक्त समय पर आकाशराजा पुत्र वसुदास, सहोदर तोंडमान और पुरोहित के साथ ऐरावत को अलंकृत कराकर श्रीनिवास को

विवाहार्थ आह्वानित करने श्रीनिवास के विश्राम मंदिर पर पहुँचे। श्रीनिवास भी अलंकृत हो कर सभा भवन में समस्त देवताओं, ऋषि-मुनियों के साथ शोभित थे। आकाशराजा को आते देखकर आसन से उठकर आगे गये और उनसे गले मिले। तब आकाशराजाने विवाह का प्रथम संस्कार वर की पूजा करने की इच्छा प्रकट की। वशिष्ठ ने अरुंधती के मार्ग दर्शन में वरपूजा करने के लिए राणी धरणी देवी से कहा। श्रीनिवास को नूतन वस्त्र और आभरण दिये गये। वरपूजा सुचारु ढंग से गयी। वरपूजा के बाद मंगलवाद्यों के साथ अलंकृत, दीपकान्तियों से शोभित और रत्न तोरणों से विराजमान विवाह मंटप की ओर श्रीनिवास चले। भवन द्वार पर तोंडमान की पत्नी ने श्रीनिवास को हारति दी और वरोचित मर्यादा के साथ वर को वेदिका तक ले जाया गया। समस्त देवगण, ऋषि-मुनि समूह उत्सुकता से कल्याणोत्सव वैभव का आनन्द लेने यथोचित स्थानों पर आसीन हुए।

40) पद्मावती - श्रीनिवास का कल्याणोत्सव

राणी धरणी देवी ने वर के पाद प्रक्षालन के लिए स्वामी पुष्करिणी तीर्थ सुवर्ण कुम्भ में भर कर लायीं। उससे पहले सद्ब्रह्मणों ने तीर्थ वेंकटगिरि से लाकर रखा था। पुरोहित ने संकल्प कहा। मधुपर्क वस्त्र दिये। आकाशराजा और धरणी देवी दोनों ने मिलकर पुष्करिणी जल के श्रीनिवास के पैर धोये। पादोदक से अपने, परिवार के लोगों तथा घर को संप्रोक्षित किया। तब उन्होने समझा कि हमारे जीवन सफल हो गये। पितर संतुष्ट हुए।

सुमुहूर्त पर आकाशराजा ने एक करोड सुर्वण निष्कों को दक्षिणा के रूप में वर को दिया। किरीट, कंठमाला, अमूल्य पदक, मुक्ताहार, भुजकीर्तियाँ, (भुजाओं पर धारण किये जानेवाले आभरण), मोतियों के कर्णाभरण, रत्न और माणिक जड़े नागाभरण, दस अंगूठियाँ, वज्र कवच, कटि सूत्र, पादुकाएँ आदि भी अर्पित किये। सुवर्ण भोजन पात्र और जल पात्र द्वय दिये गये। इन सब के साथ पद्मावती को सौंपा। कंकण धारण के उपरांत शुभ मुहूर्त में श्रीनिवास ने पद्मावती के कण्ठ में मंगल सूत्र बाँधा। मंगल वाद्य और सुवासिनियों के मंगल गीतो के बीच मंगल सूत्र धारण पर्व आँखों को अमृत - सुख प्रदान करने वाला रहा। पद्मावती और श्रीनिावास वैवाहिक बन्धन में जुड़े।

विवाह महोत्सव का एक विशिष्ट अंश लाज होमम् है। सुघटित वैवाहिक जीवन में सफलता के लिए संपन्न किया जानेवाले। होमम् ही लाजहोमम् है। वैवाहिक विधियाँ यजुः शाखानुसार चलीं। नूतन रत्नाक्षतों से देवता, ऋषि मुनि, परिवार जन आदि सब ने वेदोक्त रीति से नव-दम्पति को आशीर्वाद दिये।

विवाहोपरान्त आकाशराजा ने ब्राह्मणों को भूरि दक्षिणाएँ दीं। विवाह कार्य के संदर्भ में उपवास रखने वालों को अर्थात् वर श्रीनिवास, लक्ष्मी, ब्रह्मा, वकुलामाता, आकाशराजा, धरणी देवी, वसुदास आदि सब ने मिलकर उपवासानन्तर भोजन किया। चार दिन पर्यन्त आकाशराजा ने बन्धु जनों को प्रीति भेज दिये। पाँचवें दिन पर नव दंपति, श्रीनिवास और पद्मावती, की वस्त्रालंकारों से पूजा की।

41) श्रीनिवास का पद्मावती के साथ प्रयाण

विवाहोपरान्त आकाशराजा ने पद्मावती को श्रीनिवास को विधिवत एवं परंपरा सम्मत रूप से अर्पित किया। विश्रन्ति भवन तक ऐरावत पर अधिरोहित कराकर भेजा। तदुपरान्त श्रीनिवास ने अपने शेषाचल लौटने की बात आकाशराजा के सामने रखी। राजा ने अपने दामाद से कम से कम एक महीने तक रहने की अपनी इच्छा उनके सामने व्यक्त की। लेकिन श्रीनिवास भक्त जन मनोवल्लभ हैं। अपने कर्तव्य निर्वहण के लिए वेंकटाद्रि जाने की आवश्यकता पर जोर देकर वापसी का निश्चय प्रकट किया। आकाशराजा और धरणी देवी ने दंपति को आशीर्वाद पूर्वक अनुमति दी। उनके साथ सपरिवार विश्रान्ति भवन पहुँचाकर मंगल सामग्री (तेलुगु में 'सारे') दी।

मंगल सामग्री जो पहली बार ससुराल जानेवाली वधू को मायके से मिलती है उसमें बहु मात्रा में चावल, गुड़, घी, इमली, शक्कर, कंद-मूल-शाक, दाल आदि से युक्त होती है। इस के साथ दास-दासी जन, घोडे, हाथी, गाय आदि भी राज परिवारों से भेजे जाते हैं। यह सब अपनी पुत्री के सुखी जीवन के लिए ही हैं। उस समय श्रीनिवास ने अपने ससुर से कहा - ''इतना सब लेकर आप क्यों आये हैं। आप बडे हैं और थके भी हैं। अपने पुत्र के द्वारा भेज सकते थे।'' तब आकाशराजा ने कहा - ''हे श्रीनिवास! आप हमारे दामाद मात्र नहीं हैं, स्वयं भूपर आये भगवान हैं। आप की अनुग्रह से ही हमें सर्व मंगल प्राप्त हैं। हमें और कुछ नहीं चाहिए आप के प्रति अचंचल भक्ति हमें प्रदान कीजिए।'' श्रीनिवास ने उनको सायुज्य मुक्ति का वरदान दिया। पितृ गृह से अलग होने के कारण

उत्पन्न दुःख से व्यथित पद्मावती को सांत्वना के वचनों से थप थपाते हुए आकाशराजा ने विदा किया।

42) छह मास तक अगस्त्याश्रम में वास का निर्णय

ब्रह्मा, रुद्र आदि के साथ श्रीनिवास सुवर्णमुखी नदी प्रान्त में पहुँचे। उन से कहा गया कि विवाहोपरांत छह महीने तक नव दम्पति को पर्वत पर नहीं चढ़ना चाहिए। इस कारण श्रीनिवास ने अगस्त्याश्रम में वास करने का निश्चय किया। ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीनिवास से अनुमति लेकर अपने अपने स्वस्थानों की ओर प्रस्थान किया। श्री महालक्ष्मी भी करवीरपुर लौट गयीं।

महोत्सवं तं त्वनुभूय देवता
ब्रह्मेशपूर्वाः समहर्षिसत्तमाः।
जग्मुः स्वकं धाम महानुभावा
राजेन्द्रपूज्यं प्रशशंसुरादरात्॥
(भविष्योत्तरपुराण - एकादश अध्याय)

43) आकाशराजा का निर्याण

श्रीनिवास पद्मावती सहित आगस्त्याश्रम में छह मास की अवधि बिता रहे थे। उसी समय नारायणपुर से समाचार मिला कि राजा मृत्यु शय्या पर हैं। समाचार पाकर पद्मावती, वकुलामाता और अगस्त्य मुनि को साथ लेकर श्रीनिवास नारायणपुर पहुँचे। आकाशराजा ने श्रीनिवास और अगस्त्य को पार आने का संकेत देखकर बुलाया तो दोनों उनके पास पहुँचे। पास जाने पर भी आकाशराजा बोल नहीं पाये। धीरे-धीरे मंद्र स्वर में उन्होंने कहा - ''हे श्रीनिवास! मेरा

पुत्र और भाई के हाथ श्रीनिवास के कर कमलों में सौंपा। पत्नी त्यागे। तुरन्त एक विमान वहाँ पहुँचा। सपत्नीक दोनों पार्थिव शरीर त्याग कर दिव्य विमान में स्वर्ग पहुँचे। वसुदास ने माता-पिता के अंतिम संस्कार किये। श्रीनिवास वहाँ से पुनः अगस्त्याश्रम पहुँचे।

44) राज्याधिकार के लिए तोण्डमान और वसुदास के बीच संघर्ष

आकाशराजा के मरणोपरान्त तोण्डमान और वसुदास के बीच संघर्ष पैदा हो गया। ज्येष्ठ की मृत्यु के बाद कनिष्ठ को अधिकार मिलना है। यह तोण्डमान का वाद था। राज्य पराक्रम द्वारा आर्जित होता है और परंपरा से पिता का अधिकार पुत्र को ही संप्राप्त होता है। यह पुत्र वसुदास का अपना निर्णय था। दोनों अपने अपने वाद पर पक्के रहे। अन्ततः दोनों ने मिलकर निर्णय के लिए युद्ध को ही मार्ग बताया। युद्ध में जो जीतेगा उसी को राज्याधिकार मिलना चाहिए। दोनों ने अपने-अपने पक्ष में आनेवालों को समाहित किया। युद्ध के लिए तैयार हो गये। अन्त में श्रीनिवास के प्रीति पात्र थे। दोनों में किस के पक्ष में जायें? इस पर श्रीनिवास ने पद्मावती से कहा - ''हे नाथ! क्या आप धर्म नहीं जानते? मुझ से क्यों पूछ रहे हैं? बढ़ों का कहना है कि माता-पिता रहित बालक वसुदास की रक्षा आप का धर्म ही है न?''

श्रीनिवास ने वसुदास के पक्ष में अपने को रखकर तोण्डमान को अपने शंख और चक्र सहायता के लिए दिये। तोण्डमान और वसुदास के बीच युद्ध आरंभ हो गया। कुरु-पाँडव संग्राम सम प्रचण्ड युद्ध चलने लगा। तोण्डमान के पुत्र ने श्रीनिवास को उनके ही चक्र से आहत किया। सुदर्शन चक्र प्रहार से श्रीनिवास मूर्छित हुए। तब

पद्मावती ने अगस्त्य मुनि से कहा - ''हे मुनीन्द्र देखिए! चक्रपाणि चक्र से आहत होकर मूर्छित हुए हैं। यह क्या घटित हो रहा है? अब मैं क्या करूँ? आप कुछ मार्ग निर्देश कीजिए।'' तब अगस्त्य महामुनि ने कहा - ''हे माता! युद्ध में श्रीत्रिय सब अपना कर्तव्य मानकर युद्ध रत हैं। आपके पति की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। युद्ध भूमि में क्षत्रिय मात्र समरोत्साही होते हैं। इस लिए आप रण भूमि में जाइए और अपने पति को युद्ध क्षेत्र से बाहर लाइए। पति भक्ति स्त्रियों का परमधर्म है। पति के लिए जो भी उचित सेवा हो कीजिए। मुझे लग रहा है कि दोनों के बीच संधि मार्ग ढूँढना ही अब उचित है।'' अगस्त्य मुनि का आदेश पाकर पद्मावती पालकी पर युद्ध भूमि में पहुँचकर पति को शीतलोपचार कर मूर्छा से मुक्त किया। श्रीनिवास नींद से जगे के समान उठे और पद्मावती को देखकर कहते लगे - ''ऐसी युद्ध भूमि में स्त्रियों का क्या काम? इन्हें तुरंत यहाँ से लौटने के लिए कहिए।'' ये वचन अगस्त्य मुनि के लिए थे। सुनकर मुनि ने कहा - ''हे प्रभू! ये सन्धि कटायेंगी। चाचा और भाई के बीच संधि कराने के ही उद्देश्य से पद्मावती जी यहाँ आयी हैं।'' श्रीनिवास का मन शान्त नहीं हुआ। आगे उसी प्रकार के स्वर में बोले - ''हे मुनींन्द्र! नारियों के लिए संग्राम क्षेत्र में आना उचित नहीं है। मैं अभी तोंडमान और उसके पुत्र दोनों को संहार कर वसुदास को राज्य दूँगा।'' श्रीनिवास के वचनों को सुनकर व्यथितमना पद्मावती ने हाथ जोड कर कहा - ''हे प्राणनाथ! हे कृपानिधे! कुछ दया दिखाइए। युद्ध का फल सर्वनाश के सिवा और क्या हो सकता है? दोनों राज्य के योग्य हैं। इस बात को ध्यान में रखकर राज्य और

राज्य कोष को समान रूप से बाँट कर दीजिए। सर्वलोक की स्वस्ति होगी। युद्ध को यहीं समाप्त कराइए।'' श्रीनिवास ने पद्मावती की बातों से सहमत न होकर आगे इस प्रकार कहा - ''क्षात्र धर्म आप नहीं जानती। युद्ध भूमि से आप बाहर निकल जाइए। तोंडमान का संहार कर राज्य वसुदास को सौंपना है। यही अब मेरा लक्ष्य है। युद्ध मैदान में प्राण तक छोडना क्षत्रिय का धर्म होता है।''

पद्मावती श्रीनिवास के कठोर वचन सुनकर काँप गयीं। अगस्त्य मुनि से युद्ध निवारण का प्रयत्न करने के लिए कहा। उनकी प्रार्थना के अनुसार महामुनि ने श्रीनिवास से कहा - ''हे स्वामी! तोण्डमान और वसुदास दोनों को समझाकर संधि के लिए सुमुख कीजिए। राज्य और कोष को समय रूप में विभाजित कर उन्हें दीजिए।'' तब जाकर श्रीनिवास ने तोंडमान को बुलाकर पूछा - ''हे तोण्डमान! तुम्हारा अभीष्ट क्या है?'' तोंडमान का उत्तर था - ''आप ही मेरे मार्गदर्शक हैं। आपके अभीष्ट के अनुसार मैं चलूँगा।'' तदुपरान्त वसुदास को भी बुलाकर पूछा - ''हे वसुदास! तुम्हारी बहिन सन्धि की सलाह दे रही हैं। तुम्हारा अभिमत अब क्या है?'' तब वसुदास के वचन थे - ''हे प्रभु! मैं हमेशा आपके अनुशासन के अधीन रहनेवाला हूँ। आप की बात का मैं अतिक्रमण नहीं करूँगा। आप जो अच्छा मानते हैं वही शिरोधार्य होगा।''

दोनों की बातों को सुनकर उनके बीच संधि करायी श्रीनिवास ने। उसके अनुसार राज्य, कोष, दुर्ग आदि सब को सम भाग में बाँट कर सौंपा गया। तब श्रीनिवास ने कहा - ''आप के साथ युद्ध मैदान में मैं भी रहा हूँ। इस कारण मुझे और घर की पुत्री पद्मावती को

सोलहवाँ भाग देना न्यायोचित है।'' इतना कहकर दोनों को सहमत कराया। तदनुसार बत्तीस गाँव श्रीनिवास को दिये गये। शान्ति स्थापना के बाद तोण्डमान और वसुदास दोनों को राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर उनके आतिथ्य स्वीकार किये। पुनः श्रीनिवास अगस्त्याश्रम पहुँचे।

45) श्रीनिवास द्वारा तोण्डमान के दिव्यालय निर्माण - प्रेरणा

एक दिन तोण्डमान वेंकटेश के दर्शनार्थ वेंकटाद्रि पहुँचे। उनको देखकर श्रीनिवास बहुत ही आनंदित हुए। प्रेम से आलिंगन किया। फिर उनके आनेका कारण पूछा तो तोंडमान ने बताया - ''हे श्रीनिवास! मैं आपके दर्शनार्थ आया हूँ। कोई विहोष कार्य नहीं है। महामुनि, मानव श्रेष्ठ आदि सब आपको वेदवेद्य और पुराण पुरुष कहते हैं। उन कथनों को सुनकर मैं आप की सेवा की भावना मन में लेकर आपके पास आया हूँ।'' तब श्रीनिवास ने तोण्डमान से कहा - ''आपके सहोदर आकाशराजा ने मुझे गृहस्थ बनाया है। लेकिन वासार्थ मेरा अपना कोई निवास गृह नहीं है। आकाशराजा के जामाता होकर भी किसी अन्य के गृह में वास कर रहा हूँ। यह अपयश की बात ही है न? परतंत्रता दुःखदायक होती है। इस लिए तुम मेरे लिए एक भवन का निर्माण करके देना। आपके सिवा और कोई तीनों लोकों में यह कार्य नहीं कर सकता। मेरे वास के लिए उचित भवन का निर्माण कर उसका यश आप प्राप्त कीजिए।'' श्रीनिवास की इच्छा को पूरा करने का वादा तोण्डमान ने किया। उपयुक्त स्थल दिखाने के लिए श्रीनिवास ने शुभ नक्षत्र युक्त दिन का निश्चय किया। उस दिन को पद्मावती समेत हो श्रीनिवास ने

तोंडमान को स्थल निर्देश किया। वह वही क्षेत्र है जिसे श्रीनिवास ने वराह स्वामी से स्वामी पुष्करिणी की दक्षिण दिशा में था। पूर्वाभिमुख आलय के निर्माण का निश्चय हुआ। उस मंदिर के दो गोपुर शिखर, तीन प्राकार, सप्त द्वार तथा ध्वज स्तंभ युक्त होने का निर्णय भी लिया गया। साथ साथ आस्थान मंटप, गोशाला, धान्यागार, मालाएँ बनाने का विशाल कमरा, वस्त्र गृह, तैल शाला, भक्ष्यशाला, अभूषण गृह आदि सब की योजना भी की गयी। तदनन्तर श्रीनिवास ने तोंडमान से कहा - ''हे तोंडमान! आपने पहले श्रीतीर्थ और भूतीर्थ का निर्माण कर यश प्राप्त किया है। अब मेरे लिए मंदिर निर्माण द्वारा कीर्तिवान हो जाइए।''

46) तोण्डमान का पूर्व जन्म वृत्तांत

श्रीनिवास के वचन सुनकर तोण्डमान को आश्चर्य हुआ। तब भगवान से पूछा - ''हे स्वामी! मैं ने पहले तीर्थों का निर्माण कब और कैसे किया है? मैं ने किस जन्म में यह किया है? कृपा करके बताइएगा।''

तोण्डमान की प्रार्थना पर श्रीनिवास ने उनके पूर्व जन्म का वृत्तांत बताया - ''पहले वैखानस नामक एक ऋषि थे। उन्होंने कृष्णावतार की कथा सुनकर श्रीकृष्ण के रूप के दर्शन की अभिलाषा लेकर चोल देश में घोर तपस्या की थी। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान गोपाल के रूप उनके सामने प्रत्यक्ष हुए। तब उस ऋषि पुंगव ने कृष्ण रूप भगवान की पूजा करने की इच्छा प्रकट की। तब भगवान ने उन से कहा - 'तुम कृष्ण रूप की पूजा नहीं कर सकते। श्रीनिवास की पूजा तुम्हें करनी है। तुम शेषाचल जाओ। वहाँ

वल्मीक में श्रीनिवास हैं। उनकी ही पूजा करो। मार्ग मध्य में रंगनाथ नामक एक शूद्र मिलेगा। पूजा में वह तुम्हारी सहायता करेगा।' भगवान का आदेश पाकर वैखानस मुनि वेंकटाद्रि जाने के लिए तैयार हो गये। मार्ग मध्य में रंगदास भी मिला। दोनों चल कर वेंकटाद्रि पहुँचे। वहाँ वल्मीक में श्रीनिवास को पाया। रंगदास पूजा के लिए पुष्प लाता था। पुष्पवाटिका को सींचने के लिए एक कुआँ खोदा।

वसंत ऋतु में एक दिन कुंडल नामक एक गंधर्व अपनी पत्नियों के साथ स्वामी पुष्करिणी में जलक्रीडा कर रहा था। उनको देखते-देखते रंगदास पूजा के लिए फूल सही समय पहुँचा नहीं सका। ऋषि क्रोधित हुए। लेकिन कुछ समय बाद रंगदास को अपनी भूल समझ में आयी। पश्चात्ताप की भावना से क्षमा माँगी। तब ऋषि ने रंगदास को देखकर कहा - ''हे रंगदास! डरो मत। तुम मेरी माया के प्रभाव से सम्मोहित हो गये थे। तुम ने पश्चात्ताप किया। अब तुम्हारे लिए शुभ ही होगा। पवित्र इस स्वामी पुष्करिणी तट पर तुम्हारे पार्थिव शरीर का अन्त होगा। मरणोपरान्त तुम परिशुद्ध आत्मा हो जाओगे। फिर सुधर्मा के पुत्र के रूप में जन्म लोगे। तुम्हारा तोण्डमान नाम होगा। तोंडमंडल के राजा के रूप में यश प्राप्त करोगे। मुझ पर भक्ति और विश्वास रख रहे हो। इसलिए तुम अभी विदेह हो जाओगे।' ऐसा ही हुआ। वही रंगदास तुम हो। रंगदास के रूप में तुमने आराम और कूप का निर्माण किया है। अब मेरे लिए मंदिर का निर्माण कर यश प्राप्त करो।''

47) तोण्डमान द्वारा निर्मित मंदिर में श्रीनिवास का प्रवेश

श्रीनिवास से अपने पूर्व जन्म वृत्तांत सुनकर तोंडमान ने अपने द्वारा पूर्व जन्म में निर्मित कूप को साफ करवाया। फिर महोन्नत,

रत्नखचित, चतुर्मूर्तिसमुपेत तथा वैनतेय विभूषित विमान का निर्माण कराया। भगवान के दर्शनार्थ भक्तों के आने-जाने के लिए सीढियों का मार्ग भी निर्मित कराया। मार्ग मध्य में विश्राम मंटप और प्यास बुझाने के निमित्त कूप निर्मित कराये। सब के निर्माण कार्य के संपन्न होने पर तोंडमान ने श्रीनिवास से प्रार्थना की - ''हे स्वामी! आप की कृपा से शास्त्रसम्मत रीति से सब निर्मित हुए हैं। आप अब प्रवेश कर सकते हैं।'' श्रीनिवास ने तब तोंडमान से कहा - ''तुम्हारी भक्ति और श्रद्धा से मैं प्रभावित हूँ। अवश्य मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ।'' देवता गण, ऋषि-मुनि समूह के साथ शुभ मुहूर्त में तोण्डमान निर्मित मंदिर में प्रवेश किया। आनन्द जनक होने के कारण से वह विमान मंदिर आनन्दनिलय नाम से प्रसिद्ध हो गया।

''आनन्दजनकत्वादानन्दनिलयं विदुः।''

पद्मासनस्था पद्मावती को श्रीनिवास ने अपने वक्षःस्थल पर स्थान प्रदान किया। शंख-चक्र युक्त हो कर अपने वाम हस्त को कटि पर रख कर दक्षिण हस्त से अपने पद पद्मों की ओर संकेत करते हुए श्रीनिवास आनन्दनिलयवासी बन गये। परम गति प्रदान करनेवाले पादपद्मों के आश्रम में जानेवालों के लिए संसार सागर हमेशा कटि प्रमाण मात्र (कमर तक) की गहराई का ही होगा। यही कटि तट निकट हाथ का अर्थ और संकेत मानवों के लिए है।

कटिन्यस्तकरेणापि निजपादाब्जगामिनाम्।
नृणां भवपयोराशिं कटिदघ्नं प्रदर्शयन्॥
विधाते वेंकटेशः संप्रत्यपि रमापतिः॥

(भविष्योत्तरपुराण - त्रयोदश अध्याय)

48) ब्रह्मा का दीपारोपण और भगवान के उत्सवों का आरंभ करना

समस्त प्राणि कोटि के अभ्युदय एवं हित के लिए ब्रह्मा ने श्रीनिवास को दो अखण्ड दीप समर्पित किये। कलियुगान्त तक उनके रहने की भी बात कही। जब ज्वलित अखण्ड दीप बुझेंगे, जब श्रीनिवास के मंदिर का विमान ढह जायेगा तब तक श्रीनिवास का अवतार रहेगा। यही वरदान ब्रह्मा ने श्रीनिवास से माँगा। श्रीनिवास ने भी 'तथास्तु' कहा। उसी समय श्रीनिवास ने ध्वजारोहण से आरंभ कर रथ यात्रा से अन्त होनेवाले उत्सवों का आरंभ करने का भी आदेश ब्रह्मा को दिया। बहु विध नैवेद्यों, वेद मंत्र पाठ से अपने लिए कल्योत्सव संपन्न कराने का भी निर्देश दिया। ब्रह्मा ने तोंडमान से कह कर दारुमय रथ, उपयुक्त वाहन सेवाओं के लिए सुंदर वाहनों का निर्माण करवाया। वाहनों के लिए छत्र, चामर और अलंकरण सब विश्वकर्मा ने तैयार किया। विशिष्ट पद्धति में उत्सवों की योजना बनी।

तब श्रीनिवास ने ब्रह्मा और तोण्डमान से कहा - ''सर्व देश जनाकीर्ण उत्सवों को ही उत्तम उत्सव कहते हैं। समस्त देवताओं और राज समूहों को उत्सवों के लिए आह्वानित कीजिएगा।'' श्रीनिवास की आज्ञा के अनुसार तोण्डमान ने समस्त राजाओं को आह्वानित करने के लिए सेवकों को भेजा। उन उत्सवों में भाग लेने राजाओं की सूची के अनुसार राज्य ये हैं - अंग, वंग, कलिंग, पौगण्ड, काशी, कांभोज, केरल, विराट, कुरु, पांचाल, बर्बर, पाण्ड्य, चेदि, मत्स्य सिन्धु आदि। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र चतुर्वर्णों के लोग भी आमंत्रित किये गये। वन जातियों के समूह, चण्डाल, यवन आदि सब

के लिए उत्सव सेवाएँ थीं। सभी भक्ति संयुक्त हृदय से आये। समस्त भक्त कोटि ने श्रीनिवास को वस्त्र, आभूषण, धन आदि विविध प्रकार की वस्तु समुदाय अर्पित किये। श्रीनिवास ने उत्सवों की शोभा बढानेवाले राजाओं, मुनियों आदि को सम्मानित किया। कन्या मास में द्वितीया तिथि के दिन के अंकुरार्पण से आरंभ होकर ध्वजारोहण से ध्वजावरोहण तक विविध उत्सव आनन्दोत्साह से मनाये गये। (यही क्रम आज भी चलता है।)

49) भगवान की आज्ञा से ब्रह्मा के द्वारा भगवान मूर्तिचतुष्टय का निर्माण

चतुर्वेदात्मक चार श्रीनिवास की मूर्तियों का आविष्करण भगवान श्रीनिवास का अभीष्ट था। इसी दिशा में उन्होंने ब्रह्मा को एक और आदेश दिया। ब्रह्मा ने उस के अनुरूप चार मूर्तियों का निर्माण कराकर उनका नामकरण भी किया। उनमें प्रथम हैं उत्सव श्रीनिवास मूर्ति, द्वितीय हैं उग्र श्रीनिवास मूर्ति, तृतीय हैं सर्वाधिप श्रीनिवास मूर्ति और चतुर्थ हैं लेखक श्रीनिवास मूर्ति। इन चारों मूर्तियों के साथ मूल विराट मूर्ति के रूप में स्वयंभू होकर वेंकटाधीश श्रीनिवास रहे गये। ब्रह्मदेव ने स्वयं शोभायात्राओं की देख रेख की दीक्षा ली। छह प्रकार के अन्न-गुड़ान्न, तिलान्न, परमान्न, मुद्गान्न, माषान्न और दध्यन्न तैयार कराये गये। गुड़ापूप, तिलापूप, माषापूप, मनोहर, मोदक आदि भक्ष्य भी बनवाये गये। ब्रह्मा द्वारा परिकल्पित, रूपाइत इन उत्सवों में ये सब निवेदित हुए।

50) ब्रह्मा के द्वारा संकल्पित उत्सव क्रम

उत्सव श्रीनिवास की शोभायात्रोत्सवों के लिए ब्रह्मा द्वारा ध्वजारोहण पूर्वक तिरुवीथी उत्सवों की योजना बनी। ध्वजारोहण के पूर्व दिन शाम को अनन्त, गरुड, ब्रह्मा, ऋषि समूह आदि के साथ विष्वक्सेन तिरुमल नगर की बाहरी सीमा पर वल्मीक (बाँबी) से मंत्र जल संप्रोक्षण और अर्चना पूर्वक मिट्टी को खोदकर उसे हाथी पर रखकर मंदिर में लाया गया। उसी मिट्टी का उपयोग कर अंकुरार्पण किया गया है। इस के पश्चात अगले दिन प्रातः समय ध्वजारोपण संपन्न किया गया।

अंकुरार्पण से अवभृथ स्नान तक उत्सवों का क्रम भी नियोजित रूप में ब्रह्मा की देख रेख में वैभवपूर्ण चला। इस क्रम में प्रथम दिवस पर मनुष्यांदोलिका वाहन दिन में निर्दिष्ट रूप में संपन्न किया गया। रात को शेषवाहन (महा शेष) पर तिरुवीथियों में श्रीनिवास की शोभा यात्रा चली। द्वितीय दिवस के प्रातः समय फिर शेष वाहन (लधु शेष) और रात को हंस वाहन थे। तृतीय दिवस को दिन में सिंहवाहन और रात को मौक्तिक मंडप (मोती वितान); चतुर्थ दिवस को दिन में कल्पवृक्ष वाहन और रात को सर्व भूपाल वाहन; पंचम दिवस को दिन में मोहिनी अवतार में पालकी पर श्रीनिवास की शोभा यात्रा और रात को गरुड वाहन सेवा; षष्ठ दिवस को दिन में प्रथमतः हनुमंत वाहन और बाद में वसंतोत्सव सेवा के लिए जाते समय मंगल गिरि वाहन तथा रात को ऐरावत (हस्त) वाहन; सप्तम दिवस को प्रातः सूर्योदय के समय में ही सूर्यप्रभा (सूर्य मंडल) वाहन और बाद को वसन्तोत्सव के लिए देवेरियों सह्ति मंगलगिरि वाहन तथा रात को चन्द्रप्रभा (चंद्र मंडल) वाहन; अष्टम दिवस को दिन

में रथ यात्रा (रथोत्सव) में देवेरियों सहित तिरु वीथियों में भ्रमण और रात को अश्ववाहन। इस प्रकार वाहन सेवाएँ संपन्न की गयीं।

नवम दिवस को पालकी में शोभित होकर तिरु वीथियों में भक्तों को दर्शन देते हुए स्वामी पुष्करिणी पर भगवान पहुँचे। अवभृथ स्नान से मंगलेत्सव संपन्न किया गया। इस में मंगल चूर्णों (विशेष रूप से चंदन और हलदी) से देवेरियों सहित भगवान का अभिषेक किया गया। स्वामी पुष्करिणी में अवभृथ स्नान (यज्ञ समाप्ति पर संपन्न किये जानेवाला मंगल स्नान) कराया गया। अवभृथ स्नान श्रवण नक्षत्र युक्त और भगवान के अवतार के दिन पर संपन्न होता है। नवम दिन की रात को ध्वज का अवरोहण किया गया। इस सब के उपरान्त पुष्प यागोत्सव भी मनाया गया।

भगवान वेंकटेश के लिए ब्रह्मा द्वारा आयोजित और पर्यवेक्षित इन उत्सवों के दर्शन भाग्य को पाकर भक्त कोटि, देवता समूह और ऋषि-मुनि गण सब अपने अपने स्वस्थान वापस लौटे। अन्त में ब्रह्मा श्रीनिवास से अनुमति लेकर ब्रह्मलोक के लिए चले। उत्सवों के आनंद को हृदय में भर कर तोण्डमान भी स्वनगरी लौटे। उन्होंने अपने गृह में भी एक मंदिर बनवाकर श्रीवेंकटेश्वर की मूर्ति को प्रतिष्ठत किया। नित्य पूजा रत होकर स्वधर्म का निर्वाह करते रहे। सद्धर्म विहित रूप में राज्य पर शासन करने लगे।

51) कूर्म नामक द्विज का वृत्तांत

कूर्म नामक एक ब्रह्मण था। कार्तिक महीने में पत्नी और पुत्र सहित अपने पिता की अस्थियों को लेकर गांगा में निमज्जन के लिए

निकला। तोण्डमान चर्कवर्ती का यशोगान सुनकर काशी यात्रा के समय रास्ते में राजा की नगरी में पहुँचा। कूर्म की पत्नी का नाम महालक्ष्मी और पुत्र का नाम राघव था। दोनों को नगर के बाहर ठहरा कर ब्राह्मण कूर्म सिंहानासीन तोंडमान की सभा में गया। राजा को वेद मंत्रों से आशीर्वाद देकर कहा - ''हे राजन! मैं ने आपकी कीर्ति के बारे में सुना है। आप के पास आया हूँ।'' इस पर राजा ने ब्राह्मण से पूछा - ''हे ब्राह्मणोत्तम! बताइए! आप किस कार्य हेतु हमारे यहाँ पधारे हैं?'' तब ब्राह्मण ने उत्तर में कहा - ''हे राजन! हमारे पिताजी का देहावसान हो गया है। उनकी अस्थियों को गंगा में निमज्जन के लिए काशी जा रहा हूँ। मेरी पत्नी गर्भवती हैं। मेरा एक पंचवर्षीय बालक भी है। वे इतनी दूर की पैदल यात्रा नहीं कर पायेंगे। इसलिए मैं उनको आपकी रक्षा और देखरेख में काशी जाना चाहता हूँ। वहाँ पिता की अस्थियों के निमज्जन के उपरान्त लौट कर उनको साथ ले जाऊँगा। इतनी मेरी सहायता कीजिए। यही मेरे लिए बडी सहायता होगी।'' राजा तोंडमान ने ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार की। इतना ही नहीं, उसके मार्ग व्यय के लिए कुछ धन भी दिया।

ब्राह्मण के जाने के बाद उसकी पत्नी और पुत्र के लिए एक घर का इंतजाम किया। छह मास के लिए आवश्यक वस्तु आहार सामग्री की व्यवस्था भी की। रक्षा की दृष्टि से उस घर को बंध भी करवा दिया। राजा अपनी ओर से निश्चंत हो गये। अपने कार्यों में लीन भी हो गये।

ब्राह्मण कूर्म ने काशी की यात्रा की। गंगा में अस्थियों का निमज्जन किया। इतनी लंबी यात्रा के बाद सोचा कि पत्नी और पुत्र

तो राजा के संरक्षण में हैं, इसलिए मैं अपनी यात्राओं को कुछ और बढा सकता हूँ। काशी से गया गया। गया में पितरों के लिए गया श्राद्ध किया। अन्य तीर्थों का भी सेवन किया। यात्राओं में ही ब्राह्मण ने दो वर्ष बिताये। दो साल बाद वह राजा तोण्डमान के यहाँ पहुँचा। राजा के दरबार में पहुँचकर उनसे कहा - ''हे राजन्! आप की कृपा से मेरी काशी की यात्रा सफल रही है। गया जाकर भी गया श्राद्ध किया। अब मैं अपने साथ आपके लिए पवित्र गंगा तीर्थ लाया हूँ। इससे स्नान कर और इसका सेवन से आप पवित्र हो जाइएगा।'' पवित्र गंगा जल राजा को अर्पित किया।

वास्तव में राजा अपनी व्यस्तता के कारण ब्राह्मणी की बात भूल ही गये थे। ब्राह्मण को देखते ही उन्हें ब्राह्मणी की याद आयी। कुछ चिंता ग्रस्त हुए। फिर अपने को संभाल कर धैर्य पाया। राजा की परेशानी को देख कर ब्राह्मण से कुशल पूछा। जब राजा प्रकृतिस्थ हुए तब ब्राह्मण ने कहा - ''हे राजन्! मैं ने गर्भवती अपनी पत्नी को आप के पास रक्षार्थ छोडा था। क्या उसका सुख प्रसव हुआ है? मेरा पुत्र कैसा है? वह कुशल ही है न? मेरा परिवार कैसा है? कहाँ है?'' ब्राह्मण की आतुरता भरी बातें सुनकर तोण्डमान ने कहा - ''हे ब्राह्मणोत्तम! भय की कोई बात नहीं है। सब स्वस्थ हैं। आपका पुत्र ठीक है। पत्नी ने एक पुत्री को जन्म दिया है। कल शुक्रवार था न! श्रीवेंकटेश भगवान का आविर्भाव उत्सव था। मेरे परिवार के लोग वेंकटाद्रि गये हैं। उनके साथ आपका परिवार भी गया है। एक-दो दिन में वे वापस आयेंगीं।'' ब्राह्मण को सांत्वना के वचनों से संतुष्ट कर राजा ने अपने पुत्र को बुलवाय। और कहा - ''हे पुत्र! तुम

अकेले रहस्य रूप से ब्राह्मण की पत्नी के गृह पर जाना और लोहे की श्रृंखलाओं को तोड कर उनकी पत्नी को संतान सहित लेकर आना।'' पिता की आज्ञा पाकर राजकुमार उस घर के पास गया। खोल कर देखा तो वहाँ अस्थियाँ मात्र दिखीं। सहम गया। त्वरित गति से पिता के पास पहुँचा और कहा - ''हे पिताश्री! मैं क्या कहूँ! हमारे वंश के लिए विनाश काल का समय आ गया है। ब्राह्मण कूर्म की पत्नी संतान सहित दिवंगत है। यह सब हमारे कारण ही हो गया है। छह महीने के बाद हम ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। अन्नादि नहीं पहुँचाया। गृह बंधन से वह मुक्त हो नहीं सकी। इस का फल ही यह पाप है।''

ब्राह्मण के ठहरने की व्यवस्था तो राजा ने की। बिना मार्ग पाये राजा अपने पुत्र के साथ श्रीनिवास के शरण में गये। वेंकटाद्रिवास के चरणों में गिरकर तोंडमान रोने लगे। तब श्रीनिवास ने उन से पूछा - ''हे भक्त तोंडमान! अचानक असमय आप लोग यहाँ क्यों आये? क्यों रो रहे हैं? आप की धीरता, धनुर्बाण कुशलता आदि लोक प्रसिद्ध हैं न? ऐसे आप व्यथित क्यों हैं? कारण क्या है?'' राजा तोण्डमान तुरंत श्रीनिवास को कोई उत्तर नहीं दे सके। रोते ही रहे। तब श्रीनिवास ने तोंडमान के हृदय की बात समझकर उनके कहा - ''हे भक्तवर! मैं ने तुम्हारी हृदय की वेदना समझी है। मैं तुम्हारे पाप को अपना पाप मान रहा हूँ। तुमने पाप किया है। मैं अपने भक्त को कभी किसी प्रकार से दुखी होने नहीं दूँगा। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं रही। तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो भावना है उसके अनुसार अब मेरा कर्तव्य तुम्हारे पाप का

परिहार करना ही है। मैं मृतों को पुनर्जीवित कर रहा हूँ। अपने पुत्र को भेज कर मृतों की अस्थियों मँगाओ।'' श्रीनिवास का आश्वासन पाकर राजा तोण्डमान ने पुत्र को अस्थियाँ लाने के लिए भेजा। वह शीघ्र गति से जाकर एक नूतन वस्त्र में अस्थियाँ बाँध कर वेंकटाद्रि ले आया।

अस्थियाँ श्रीनिवास के सामने रखी गयीं। श्रीनिवास उन अस्थियों को अपने उत्तरीय में बाँध कर स्वामी पुष्करिणी तीर्थ की पूर्व दिशा में स्थित पांडु तीर्थ के पास ले गये। अस्थियों को एक शिला पर रखकर स्वयं तीर्थ में स्नान किया। अंजली में पवित्र तीर्थ लेकर अस्थियों पर छिडका। तुरन्त बाह्मणी और उसके बच्चे पुनर्जीवित हो गये। तीर्थ प्रभाव से पुनर्जीवित होने के कारण उस तीर्थ को अस्थि तीर्थ नाम पड़ा। तब से यह मान्यता बढ़ी कि इस तीर्थ में अस्थि-निमज्जन से मृतों को स्वर्ग धाम सुलभ प्राप्त हो जाएगा।

बाह्मणी और उसकी संतान को जीवित करके श्रीनिवास ने उन्हें राजा को सौंपा और कहा - ''हे राजा! तुम्हारे अग्रज मेरे आप्त हैं। मुझे जो भी कोई भी किसी प्रकार का भी उपकार करेगा तो मैं उसे शताधिक मात्रा में प्रत्युपकार करूँगा। यही मेरी प्रतिज्ञा है। इस के बाद मैं मौन धारण कर रहा हूँ। अत्यंत आत्मीय भक्तों के सिवा और किसी अन्य से मैं बात नहीं करूँगा। कलियुग में आज से मैं अन्य भक्तों के द्वारा ही आपन्न भक्तों से बात करूँगा। अब तुम अपने पुर वापस जाओ। ब्राह्मण की पत्नी और संतान को उसे सौंपकर तुम निष्कंटक राज्य पालन करो।''

भगवान से अनुज्ञा लेकर राजा तोण्डमान अपनी नगरी लौटे। ब्राह्मण को उसकी पत्नी और संतान को सौंपकर बीते हुए वृत्तांत को भी बताया। राजा के समक्ष में ब्राह्मण ने पत्नी से पूछा कि वह इतने दिन कहाँ रही थी। इस पर ब्राह्मणी ने प्रत्युतर में कहा - ''यह सब दैव माया ही है। इस का वर्णन मैं किन शब्दों में कर पाऊँगी? श्रीनिवास के उदर में मैं ने विचित्र लोकों का दर्शन किया है। ब्रह्मादि देवताओं का दर्शन भी हमें हुआ। सप्त समुद्रों को, गिरि-पर्वतों को, नदी-नदों को देखा है।'' इस पर ब्राह्मण ने लज्जित होकर कहा - ''अब मेरा जन्म क्यों? मेरे वेदाध्ययन से क्या लाभ है? मेरी तपस्या क्यों? ब्रह्मादि देवताओं के लिए अलभ्य विचित्र लोकों का तुमने नारायण के उदर में रक्षिता हो दर्शन किया है। तुम धन्या हो।'' इस पर तोण्डमान भी ब्राह्मणी के पुण्य फल पर आश्चर्यचकित हुए। उसकी भूरि प्रशंसा की। ब्राह्मण ने भी तोण्डमान की अद्भुत भक्ति और शक्ति की स्तुति कर अपने स्वग्राम के लिए प्रस्थान किया।

52) तोण्डमान द्वारा श्रीनिवास की सहस्त्रनामार्चना

तोण्डमान ने कुछ और समय तक शासन किया। परन्तु उनके मन में एक शंका पैदा हो गई। मन ही मन में सोचा कि श्रीनिवास शायद मुझ पर नाराज हैं। उनका अनुग्रह कैसे पुनः प्राप्त किया सकता है? राजा अंगीरस आदि मुनियों से उपाय पूछे। अंगीरस महामुनि ने राजा से कहा - ''हे राजन! श्रीनिवास के अनुग्रह को पुनः प्राप्त करने के लिए आपको तुलसी दलों से सहस्त्रनामार्चना करना ही एक मात्र उपाय है।'' राजा ने श्रीनिवास की पूजा के लिए एक सहस्त्र सुवर्ण तुलसी दल तैयार करवाये। वेंकटेश के

सहस्त्रनामोच्चारण के साथ सुवर्ण तुलसी दल उनके पादों में अर्पित करते हुए नित्य पूजा करने लगे। इस प्रकार तीन महीने बीचे। फिर भी राजा तोंडमान को लगा कि श्रीनिवास का क्रोध शमित नहीं हुआ। तब तोण्डमान ने बहुत दुखी होकर श्रीनिवास से प्रार्थना की - ''हे वेंकटपति! आप गुणाधिक भक्तों के अपराध गिनते नहीं है। हे पुरुषोत्तम! मैं भी आपका भक्त ही हूँ। मुझे क्षमा कीजिए। अगर मेरा कोई अपराध हो अथवा अनजाने में दुर्वव्यवहार हो गया हो उसे भूलकर मुझे क्षमित कीजिए। आप भक्तों को वर देने में सर्वश्रेष्ठ हैं। मुझ पर दया कीजिए।'' तब श्रीनिवास ने आकाश भाषण द्वारा राजा से कहा - ''मेरे अनेक भक्त हैं। लेकिन तुम जैसा दुष्कृत्य करनेवाला कोई नहीं है। ब्राह्मण स्त्री और उसकी संतान की मृत्यु के कारक बनकर तुमने धोर पाप किया है। ऐसे जघन्य पाप से तुम कैसे बच सकते हो? मैं ने तुम्हारे अग्रज की भक्ति और समर्पण भाव के कारण ब्राह्मणी और उसकी संतान को पुनर्जीवित किया है।'' राजा ने आकाशवाणी के रूप में श्रीनिवास के वचन सुनकर प्रार्थना की - ''हे हरि! उपकारी अपने उपकारों को कभी दूसरों के सामने कहता नहीं है। मूर्ख भी अपनी की गयी सेवा के बारे में किसी से कहता नहीं। मेरे समान भक्त तीनों लोकों में और कोई नहीं है। भक्तों में मैं अग्रगण्य हूँ। दयालुओं में आप असमान हैं।'' तोण्डमान की गर्वोक्तियों को सुनकर श्रीनिवास चुप ही हो गये। राजा ने पुनः अपनी तुलसी दलों की पूजा का आरंभ किया।

एक दिन तोण्डमान ने आश्चर्य से देखा कि अपने सुवर्ण तुलसी दलों पर मृण्मय तुलसी दल थे। दूसरे दिन उन्होंने पाया कि सुवर्ण

तुलसी दल दूर पडे थे और मिट्टी के तुलसी दल हरि के पाद पद्मों पर थे। तब तोण्डमान ने समझा कि अब भी श्रीनिवास के हृदय में मेरे प्रति क्रोध शमित नहीं हुआ। जोर से रोते हुए उन्होंने श्रीनिवास को लक्षित कर कहा - ''हे भगवान! मैं कैसा पापी हूँ। अनाथ हो गया हूँ। आप मुझे क्यों उपेक्षित कर रहे हैं? किस भक्ताग्रेसर ने मिट्टी के तुलसी दलों से आपकी पूजा की है? आप उन्हें सप्रेम स्वीकार कर रहे हैं। मुझे बता कर अनुगृहीत किजिए।'' तब श्रीनिवास ने तोण्डमान से कहा -

53) भीम नामक कुलाल का वृत्तांत

''हे राजन! मेरे अनेक भक्त हैं। उनमें भीम नामक एक गरीब कुलाल भी हैं। वह यहाँ की उत्तर दिशा में एक योजन की दूरी पर है। वह अनन्त भक्ति से भित्तिका बिल मध्य दारु रूप में स्थित मुझे प्रतिदिन पूजता हो। हर दिन अपना नित्य नैमित्तिक कार्य पूरा करता है। स्वस्थचित्त हो कर स्नान करता है। विधि पूर्वक मिट्टी से बने तुलसी दलों से मुझे पूजता है। उसकी भक्ति से संतुष्ट हो कर उसकी पूजा मैं प्रेम से ग्रहण करता हूँ। उसके यहाँ जाकर मेरे अनेक भक्त उसे और उसकी पत्नी का दर्शन करते हैं। मैं ने पहले ही कहा था कि मेरे अनेक विशिष्ट भक्त हैं। तुम भी जाकर स्वयं अपने को पहचानो। तुम ने गर्व और अहंकार से कहा था कि तुम्हारे समान भक्त संसार में और कोई नहीं है। वहाँ जाने पर तुम्हें अपनी स्थिति का बोध होगा।'' तोण्डमान भगवान के इन वचनों को सुनकर अपना अहंकार छोड राजचिह्नों को दूर रख कर पैदल ही कुलाल भीम के घर की ओर चले।

तोण्डमान कुलाल भीम के आँगन में पहुँचते ही मुर्छित होकर द्वार पर गिरे। कुलाल दौड़कर पास आया। मन में ही कहने लगा - ''यह कैसा कष्ट है? राजा गिर गये हैं। मुझ से क्या अपराध हो गया? मैं तो राजा के आदेशानुसार ही जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।'' व्याकुल कुलाल भीम बहुत ही व्यथित होने लगा। इतने में धीरे-धीरे राजा मचले। उनमें बाह्य चेतना आयी। राज के मुँह से शब्द निकले - ''भीम कहाँ हैं? कुलाल भीम कहाँ हैं? वे महान हरिभक्त हैं। उन के पाद युगल को मैं अभिवादन करना चाहता हूँ। कुलाल भीम कहाँ हैं?''

उसी समय कुलाल भीम के सामने भक्त वत्सल श्रीनिवास भी प्रत्यक्ष हो गये। कुलाल के आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। अनेक प्रकार से भगवान की स्तुति की। तुरंत भगवान कुलाल के पास पहुँचे। भगवान से तब कुलाल भीम ने कहा - ''हे भगवन्! आप क्यों मुझ जैसे शूद्र के पास पहुँचे हैं। मैं विदुर, शबर, गजेन्द्र, विभीषण जैसा ज्ञानी नहीं हूँ। मेरे पास आप को देने के लिए योग्य वस्तु भी नहीं है। मेरे घर में आपको अर्पित करने के लिए भी कुछ उपयुक्त वस्तु नहीं है।'' उस समय कुलाल भीम की पत्नी तमाली ने भागवान से हाथ जोडकर कहा - ''हे गोविन्द! मेरी बुद्धि तो आप की ओर लगी है। मैं मंत्र नहीं जानती हूँ। तंत्र नहीं जानती हूँ। मैं ने योग्य कोई काम नहीं किया है। हम जैसे निम्न वर्ग के लोगों के लिए वेदविद्याएँ कहाँ? हम तपस्या कहाँ करते है? मेरे और मेरे पति दोनों की भक्ति भावना ही हमारी है। मैं ने कुछ खाना बनाया है। उसे स्वीकार कीजिएगा।''

तमाली के भक्ति भाव पूर्ण वचन सुनकर भगवान प्रसन्न हो गये। उसे संबोधित कर कहा - ''हे तमाली! मैं अवश्य तुम्हारे पति के लिए जो खाना तुमने बनाया है उसे हम दोनों एक साथ बैठकर खाएँगे।'' भगवान ने कुलाल के घर में रमासमेत जाकर खाना स्वीकारा। अपने को खाना खिलाने वालों को परमपद प्रदान किया। समस्त देवता समूह ने इस विशेष को गगन से देखा देव-दुंदुभियाँ बजीं। आसमान से पुष्प वर्षा हुई। इतने में स्वर्ग से एक विमान भुवि पर उतरा। दिव्य विमान पर आसीन हो कर कुलाल भीम दम्पति वैकुण्ठ की ओर उढ़ चले। तोण्डमान देखते ही रह गये।

54) श्रीनिवास का राजा तोण्डमान को मोक्ष प्रदान करना

कुलाल दम्पति की भक्ति-प्रपत्तियों को देखकर राजा तोण्डमान लज्जित हुए। फिर मुकुलित हस्त होकर भगवान से प्रार्थना की - ''हे भगवन्! मेरे ही देशवासी और शूद्र वर्ण के कुलाल भीम को आपने सद्गति दी है। मैं तो आपके बन्धु वर्ग का हूँ। आपके अधीन हूँ। अब मेरी स्थिति क्या होगी?'' इस पर श्रीनिवास ने राजा तोण्डमान से कहा - ''तुम्हें अब अपने इस पार्थिव शरीर को छोड़ना होगा। एक और देह का आश्रय पाना है। उसी देह के द्वारा तुम मुझे प्राप्त करोगे।'' श्रीनिवास के वचन सुनकर तोण्डमान वेंकटाद्रि पहुँचे। वहाँ की स्वामी पुष्करिणी में स्नान किया। तुरन्त उनके शरीर से प्राण पखेरु उड़ गये। एक दिव्य देह मिला। उस रूप में तोण्डमान ने श्रीनिवास की प्रार्थना की। भक्तवत्सल ने कैवल्य प्रदान किया।

एवं हरिस्तत्र चरित्रमद्भुतं
कुर्वन् जगन्मातृसमन्वितो गिरौ।

आस्ते जगत्यां च सुरौघपूजितो
ददद्यथेष्टं च मनोरथान् सताम्।।

(भविष्योत्तरपुराण 14 वाँ अध्याय)

यः शृणोतीदमाख्यानं मनोरथफलप्रदम्,
इह लोके सुखं भुक्त्वा सोऽथ याति हरेः पदम्।।

भविष्योत्तरपुराणोक्त वेंकटाचलमाहात्म्यम् समाप्तम्।

तृतीय आश्वास संपूर्ण।

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम्।
श्रीवेंकटनिवासाय श्रीनिवासाय मंगलम्।।
श्रीवेंकटाद्रिनिलयः कमलाकामुकः पुमान्।
अभङ्गुरविभूतिर्नस्तरंगयतु मंगलम्।।

ॐ नमो वेंकटेशाय

* * *

अनुबन्ध

श्रीरस्तु

अथ श्री वाराहपुराणान्तर्गत
श्री वेंकटेशाष्टोत्तर शतनाम प्रारम्भः

—— * ——

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम्।
श्री वेंकटनिवासाय श्रीनिवासाय मंगलम्।।
श्री वेंकटाचलाधीशं श्रियाध्यासितवक्षसम्।
श्रितचेतनमन्दारं श्रीनिवासमहं भजे।।

श्री वेंकटेशाष्टोत्तरशतनामावलिः

मनुयः ।। सूत सर्वार्थतत्त्वज्ञ सर्ववेदान्तपारग।
येन चाराधितस्सद्यश्श्रीमद्वेङ्कटनायकः ।। 1 ।।

भवत्यभीष्टसर्वार्थप्रदस्तद्ब्रूहि नो मुने।
इति पृष्टस्तदा सूतो ध्यात्वा स्वात्मनि तत्क्षणात्।। 2 ।।

उवाच मुनिशार्दूलान् श्रूयतामिति वै मुनिः।
श्री सूतः।। अस्ति किञ्चिन्महद्गोप्यं भगवत्प्रीतिकारकम् ।। 3 ।।

पुरा शेषेण कथितं कपिलाय महात्मने।
नाम्नामष्टशतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।। 4 ।।

आदाय हेमपद्मानि स्वर्णदीसम्भवानि च।
ब्रह्मा तु पूर्वमभ्यर्च्य श्रीमद्वेङ्कटनायकम् ।। 5 ।।

अष्टोत्तरशतैर्दिव्यैर्नामभिर्मुनिपूजितैः।
स्वाभीष्टं लब्धवान् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।। 6 ।।

भवद्भिरपि पद्मैश्च समर्च्यस्तैश्च नामभिः।
तेषां शेषनागाधीश मानसोल्लासकारिणम् ।। 7 ।।

नाम्नामष्टशतं वक्ष्ये वेंकटाद्रिनिवासिनः।
आयुरारोग्यदं पुंसां धनधान्यसुखप्रदम् ।। 8 ।।

ज्ञानप्रदं विशेषेण महदैश्वर्यकारकम्।
अर्चयेन्नामभिर्दिव्यैर्वेङ्कटेशपदाङ्कितैः ।। 9 ।।

नाम्नामष्टशतस्यास्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्त्तितः।
छन्दोऽनुष्टुप्तथा देवो वेङ्कटेश उदाहृतः ।। 10 ।।

नीलगोक्षीरसम्भूतो बीजमित्युच्यते बुधैः।
श्रीनिवासस्तदा शक्तिर्हृदयं वेङ्कटाधिपः ।। 11 ।।

विनियोगस्तथाभीष्ट सिद्ध्यर्थे च निगद्यते।
ॐ नमो वेङ्कटेशाय शेषाद्रिनिलयाय च ।। 12 ।।

वृषद्दग्गोचरायाऽथ विष्णवे सततं नमः।
सदञ्जनगिरीशाय वृषाद्रिपतये नमः ।। 13 ।।

मेरुपुत्रगिरीशाय सरस्स्वामितटीजुषे।
कुमाराकल्पसेव्याय वज्रदृग्विषयाय च ।। 14 ।।

सुवर्चलासुतन्यस्त सैनापत्यभराय च।
रामाय पद्मनाभाय सदा वायुस्तुताय च ।। 15 ।।

त्यक्तवैकुण्ठलोकाय गिरिकुञ्जविहारिणे।
हरिचन्दनगोत्रेन्द्रस्वामिने सततं नमः ॥ 16 ॥

शङ्खराजन्यनेत्राब्ज विषयाय नमो नमः।
वसूपरि परित्रात्रे कृष्णाय सततं नमः ॥ 17 ॥

अब्धिकन्यापरिष्वक्तवक्षसे वेंङ्कटाय च।
सनकादिमहायोगि पूजिताय नमो नमः ॥ 18 ॥

देवजित्प्रमुखानन्तदैत्यसङ्घप्रणाशिने।
श्वेतद्वीपवसन्मुक्त पूजिताङ्घ्रियुगाय च ॥ 19 ॥

शेषपर्वतरूपत्व प्रकाशनपराय च।
सानुस्थापितताक्ष्र्याय ताक्ष्र्याचलनिवासिने ॥ 20 ॥

मायागूढ़विमानाय गरुडस्कन्धवासिने।
अनन्तशिरसे नित्यमनन्ताक्षाय ते नमः ॥ 21 ॥

अनन्तचरणायाऽथ श्रीशैलनिलयाय च।
दामोदराय ते नित्यं नीलमेघनिभाय च ॥ 22 ॥

ब्रह्मादिदेवदुर्दर्श विश्वरूपाय ते नमः।
वैकुङ्ठागतसद्धेम विमानान्तर्गताय च ॥ 23 ॥

अगस्त्याभ्यर्थिताशेषजनदृग्गोचराय च।
वासुदेवाय हरये तीर्थपञ्चकवासिने ॥ 24 ॥

वामदेवप्रियायाऽथ जनकेष्टप्रदाय च।
मार्कण्डेयमहातीर्थ जातपुण्यप्रदाय च ॥ 25 ॥

वाक्पति ब्रह्मदात्रे च चन्द्रलावण्यदायिने।
नारायणनगेशाय ब्रह्मक्लुप्तोत्सवाय च ॥ 26 ॥

शङ्खचक्रवरा नम्रलसत्करतलाय च।
द्रवन्मृगमदासक्त विग्रहाय नमो नमः ॥ 27 ॥

केशवाय नमो नित्यं नित्ययौवनमूर्तये।
अर्थितार्थप्रदात्रे च विश्वतीर्थाघहरिणे ॥ 28 ॥

तीर्थस्वामिसरस्स्नात जनाभीष्टप्रदायिने।
कुमारधारिकावास स्कन्धाभीष्टप्रदाय च ॥ 29 ॥

जानुदघ्न समुद्भूत पोत्रिणे कूर्ममूर्तये।
किन्नरद्वन्द्वशापान्त प्रदात्रे विभवे नमः ॥ 30 ॥

वैखानसमुनिश्रेष्ठपूजिताय नमो नमः।
सिंहाचलनिवासाय श्रीमन्नारायणाय च ॥ 31 ॥

सद्भक्तनीलकण्ठार्च्य नृसिंहाय नमो नमः।
कुमुदाक्ष गणश्रेष्ठ सैनापत्यप्रदाय च ॥ 32 ॥

दुर्मेधप्राणहर्त्रे च श्रीधराय नमो नमः।
क्षत्रियान्तकरामाय मत्स्यरूपाय ते नमः ॥ 33 ॥

पाण्डवारिप्रहर्त्रे च श्रीकराय नमो नमः।
उपत्यकाप्रदेशस्थ शङ्करध्यातमूर्तये ॥ 34 ॥

रुक्माब्जसरसीकूल लक्ष्मीकृततपस्विने।
लसल्लक्ष्मीकराम्भोज दत्तकल्हारकस्रजे ॥ 35 ॥

ॐ नमो वेंकटेशाय

अन्नमाचार्य के पद

''वेंकटेशमंत्र''

सब मंत्र इसी एक मंत्र में आ लसे हैं
मिला माखन सम वेंकटेश मंत्र मुझे।।

नारद का है जप मंत्र नारायणमंत्र,
बना प्रह्लाद का स्मरण मंत्र नारसिंहमंत्र,
स्वेच्छा से लिया विभीषण ने राममंत्र,
मिला माखन सम वेंकटेशमंत्र मुझे ।।

भक्त ध्रुव ने जपा वासुदेवमंत्र,
अर्जुन को भाया श्रीकृष्णमंत्र,
महर्षि शुक ने रटा विष्णुमंत्र,
मिला माखन सम वेंकटेशमंत्र मुझे ।।

सब मंत्रों के मूल हैं इंदिरानाथ,
सब के लिए है यही परब्रह्म मंत्र,
तारनेवाला मिला ज्योत्स्ना मंत्र यह,
मिला माखन सम वेंकटेशमंत्र मुझे ।।

मूलः अन्नमय्या **अनुवाद : ग्रंथानुवादक**

सब कुछ तू ही

सब कुछ तू ही हे हरि पुंडरीकाक्ष,
पास मेरे अकेले तू ही रे श्रीरघुराम ।।

कुल तू ही हे गोविंदा,
संपति मेरी तू ही हे करुणानिधि,
याद मेरी तू ही हे धरणीधर,
वास मेरा तू ही हे नीरजनाभ ।।

मेरा तन तू ही हे दामोदर,
मेरा जीवन तू ही हे मधुसूदन,
मेरा यापन तू ही हे विट्ठलनाथ,
आगे पीछे तू ही हे विष्णुदेव ।।

आदि तू ही हे पुरुषोत्तम,
मध्य अन्त तू ही हे नारायण,
यों ही दो वेंकटेश मुझे सुगति,
सब कुछ तू ही तू ही तू ही।।

मूल : अन्नमय्या **अनुवाद : ग्रंथानुवादक**

ये ही हैं परमात्मा - - -

ये ही हैं परमात्मा ये ही लोकनायक,
इन से बढ़कर हैं कौन देव भुवि पर ॥

क्या कमलवासिनी लक्ष्मी हैं और किसी के पास?
हैं केवल कमलनाभ के पास!
क्या कमलज ब्रह्मा सम पुत्र हैं और किसी के पास?
हैं केवल कमलानाथ के पास!
क्या भक्तों की पापहारिणी भागीरथी हैं और किसी के
पास?
हैं केवल श्री माधव के चरणों के पास!
क्या सब की कामनाओं को पूरने का कौशल है और
किसी के पास?
है एक शरणागतवत्सल श्री वेंकटपति के
पास!

(मूल : अन्नमय्या) **(अनुवाद : ग्रन्थ अनुवादक)**